0751CH01

1 महाभारत कथा

महाभारत की कथा महर्षि पराशर के कीर्तिमान पुत्र वेद व्यास की देन है। व्यास जी ने महाभारत की यह कथा सबसे पहले अपने पुत्र शुकदेव को कंठस्थ कराई थी और बाद में अपने दूसरे शिष्यों को। मानव-जाति में महाभारत की कथा का प्रसार महर्षि वैशंपायन के द्वारा हुआ। वैशंपायन व्यास जी के प्रमुख शिष्य थे। ऐसा माना जाता है कि महाराजा परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने एक बड़ा यज्ञ किया। इस महायज्ञ में सुप्रसिद्ध पौराणिक सूत जी भी मौजूद थे। सूत जी ने समस्त ऋषियों की एक सभा बुलाई। महर्षि शौनक इस सभा के अध्यक्ष हुए।

सूत जी ने ऋषियों की सभा में महाभारत की कथा प्रारंभ की कि महाराजा शांतनु के बाद उनके पुत्र चित्रांगद हस्तिनापुर की गद्दी पर बैठे। उनकी अकाल मृत्यु हो जाने पर उनके भाई विचित्रवीर्य राजा हुए। उनके दो पुत्र हुए—धृतराष्ट्र और पांडु। बड़े बेटे धृतराष्ट्र जन्म से ही अंधे थे, इसलिए उस समय की नीति के अनुसार पांडु को गद्दी पर बैठाया गया।

पांडु ने कई वर्षों तक राज्य किया। उनकी दो रानियाँ थीं—कुंती और माद्री। कुछ समय राज्य करने के बाद पांडु अपने किसी अपराध के प्रायश्चित के लिए तपस्या करने जंगल में गए। उनकी दोनों रानियाँ भी उनके साथ ही गईं। वनवास के समय कुंती और माद्री ने पाँच पांडवों को जन्म दिया। कुछ समय बाद पांडु की मृत्यु हो गई। पाँचों अनाथ बच्चों का वन के ऋषि-मुनियों ने पालन-पोषण किया और पढ़ाया-लिखाया। जब युधिष्ठिर सोलह वर्ष के हुए, तो ऋषियों ने पाँचों कुमारों को हस्तिनापुर ले जाकर पितामह भीष्म को सौंप दिया।

पाँचों पांडव बुद्धि से तेज़ और शरीर से बली थे। उनकी प्रखर बुद्धि और मधुर स्वभाव ने सबको मोह लिया था। यह देखकर धृतराष्ट्र के पुत्र कौरव उनसे जलने लगे और उन्होंने पांडवों को तरह-तरह से कष्ट पहुँचाना शुरू किया।

दिन-पर-दिन कौरवों और पांडवों के बीच वैरभाव बढ़ता गया। अंत में पितामह भीष्म ने दोनों को किसी तरह समझाया और उनके बीच संधि कराई। भीष्म के आदेशानुसार कुरु-राज्य के दो हिस्से किए गए। कौरव हस्तिनापुर में ही राज करते रहे और पांडवों को एक अलग राज्य दे दिया गया, जो आगे चलकर इंद्रप्रस्थ के नाम से मशहूर हुआ। इस प्रकार कुछ दिन शांति रही।

उन दिनों राजा लोगों में चौसर खेलने का आम रिवाज था। राज्य तक की बाज़ियाँ लगा दी जाती थीं। इस रिवाज के मुताबिक एक बार पांडवों और कौरवों ने चौपड़ खेला। कौरवों की तरफ़ से कुटिल शकुनि खेला। उसने युधिष्ठिर को हरा दिया। इसके फलस्वरूप पांडवों का राज्य छिन गया और उनको तेरह वर्ष का वनवास भोगना पड़ा। उसमें एक शर्त यह भी थी कि बारह वर्ष के वनवास के बाद एक वर्ष अज्ञातवास

करना होगा। उसके बाद उनका राज्य उन्हें लौटा दिया जाएगा।

द्रौपदी के साथ पाँचों पांडव बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास में बिताकर वापस लौटे, पर लालची दुर्योधन ने लिया हुआ राज्य वापस करने से इंकार कर दिया। अतः पांडवों को अपने राज्य के लिए लड़ना पड़ा। युद्ध में सारे कौरव मारे गए, तब पांडव उस विशाल साम्राज्य के स्वामी हुए।

इसके बाद छत्तीस वर्ष तक पांडवों ने राज्य किया और फिर अपने पोते परीक्षित को राज्य देकर द्रौपदी के साथ तपस्या करने हिमालय चले गए।

संक्षेप में यही महाभारत की कथा है।

0751CH02

2 देवव्रत

गंगा एक सुंदर युवती का रूप धारण किए नदी के तट पर खड़ी थी, उनके सौंदर्य और नवयौवन ने राजा शांतनु को मोह लिया था।

गंगा बोली, "राजन्! आपकी पत्नी होना मुझे स्वीकार है, पर इससे पहले आपको मेरी शर्तें माननी होंगी। क्या आप मानेंगे?"

राजा ने कहा–"अवश्य!"

राजा शांतनु ने गंगा की सारी शर्तें मान लीं और वचन दिया कि वह उनका पूर्ण रूप से पालन करेंगे।

समय पाकर गंगा से शांतनु के कई तेजस्वी पुत्र हुए, परंतु गंगा ने उनको जीने नहीं दिया। बच्चे के पैदा होते ही वह उसे नदी की बहती हुई धारा में फेंक देती थी और फिर हँसती-मुसकराती राजा शांतनु के महल में आ जाती थी।

अज्ञात सुंदरी के इस व्यवहार से राजा शांतनु चकित रह जाते। उनके आश्चर्य और क्षोभ का पारावार न रहता। शांतनु वचन दे चुके थे, इस कारण मन मसोसकर रह जाते थे।

सात बच्चों को गंगा ने इसी भाँति नदी की धारा में बहा दिया। आठवाँ बच्चा पैदा हुआ। गंगा उसे भी लेकर नदी की तरफ़ जाने लगी, तो शांतनु से न रहा गया। बोले–"माँ होकर अपने नादान बच्चों को अकारण ही क्यों मार दिया

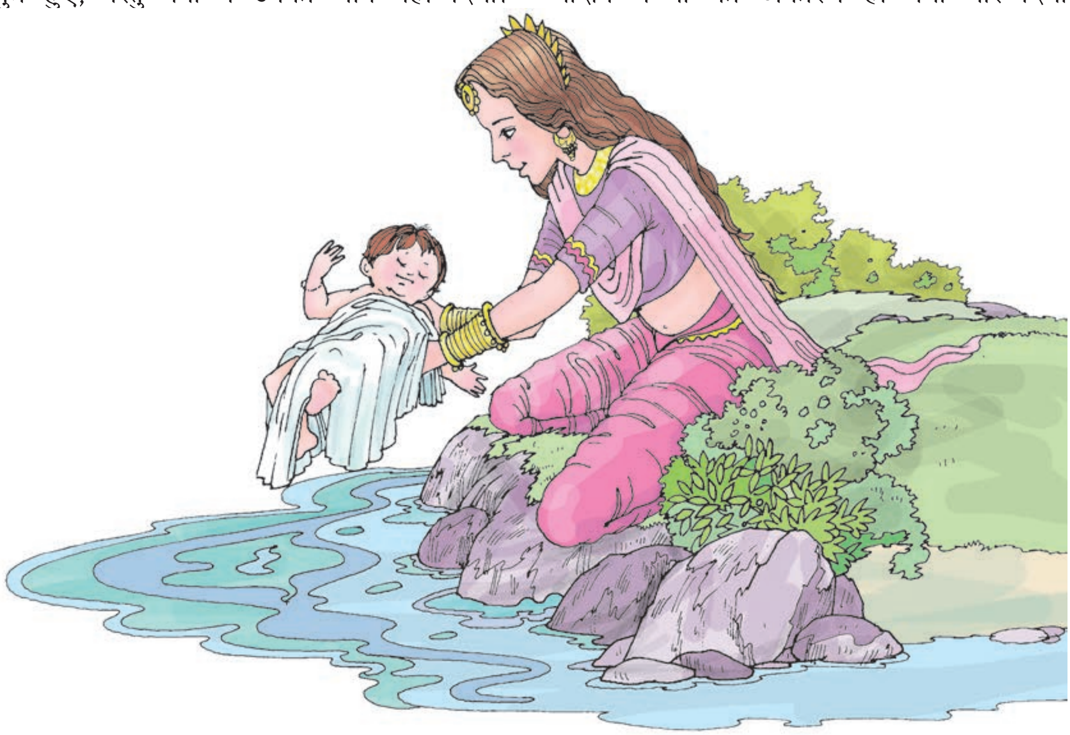

करती हो? यह घृणित व्यवहार तुम्हें शोभा नहीं देता है।"

राजा की बात सुनकर गंगा मन-ही-मन मुसकराई, परंतु क्रोध का अभिनय करती हुई बोली–"राजन्! क्या आप अपना वचन भूल गए हैं? मालूम होता है कि आपको पुत्र से ही मतलब है, मुझसे नहीं। आपको मेरी क्या परवाह है! ठीक है, पर शर्त के अनुसार मैं अब नहीं ठहर सकती। हाँ, आपके इस पुत्र को मैं नदी में नहीं फेंकूँगी। इस अंतिम बालक को मैं कुछ दिन पालूँगी और फिर पुरस्कार के रूप में आपको सौंप दूँगी।"

यह कहकर गंगा बच्चे को साथ लेकर चली गई। यही बच्चा आगे चलकर भीष्म पितामह के नाम से विख्यात हुआ।

गंगा के चले जाने से राजा शांतनु का मन विरक्त हो गया। उन्होंने भोग-विलास से जी हटा लिया और राज-काज में मन लगाने लगे।

एक दिन राजा शिकार खेलते-खेलते गंगा के तट पर चले गए, तो देखा किनारे पर खड़ा एक सुंदर और गठीला युवक गंगा की बहती हुई धारा पर बाण चला रहा था। बाणों की बौछार से गंगा की प्रचंड धारा एकदम रुकी हुई थी। यह दृश्य देखकर शांतनु दंग रह गए।

इतने में ही राजा के सामने स्वयं गंगा आकर उपस्थित हो गई। गंगा ने युवक को अपने पास बुलाया और राजा से बोली–"राजन्, पहचाना मुझे और इस युवक को? यही आपका और मेरा आठवाँ पुत्र देवव्रत है। महर्षि वसिष्ठ ने इसे शिक्षा दी है। शास्त्र-ज्ञान में शुक्राचार्य और रण-कौशल में परशुराम ही इसका मुकाबला कर सकते हैं। यह जितना कुशल योद्धा है, उतना ही चतुर राजनीतिज्ञ भी है। आपका पुत्र, मैं आपको सौंप रही हूँ। अब ले जाइए इसे अपने साथ।"

गंगा ने देवव्रत का माथा चूमा और आशीर्वाद देकर राजा के साथ उसे विदा कर दिया।

3 भीष्म-प्रतिज्ञा

तेजस्वी पुत्र को पाकर राजा प्रफुल्लित मन से नगर को लौटे और देवव्रत राजकुमार के पद को सुशोभित करने लगे।

चार वर्ष और बीत गए। एक दिन राजा शांतनु यमुना-तट की ओर घूमने गए, तो वहाँ अप्सरा-सी सुंदर एक तरुणी खड़ी दिखाई दी। तरुणी का नाम सत्यवती था।

गंगा के वियोग के कारण राजा के मन में जो विराग छाया हुआ था, वह इस तरुणी को देखते ही विलीन हो गया। उस सुंदरी को अपनी पत्नी बनाने की इच्छा उनके मन में बलवती हो उठी और उन्होंने सत्यवती से प्रेम-याचना की। सत्यवती बोली—"मेरे पिता मल्लाहों के सरदार हैं। पहले उनकी अनुमति ले लीजिए। फिर मैं आपकी पत्नी बनने को तैयार हूँ।"

राजा शांतनु ने जब अपनी इच्छा उन पर प्रकट की, तो केवटराज ने कहा—"आपको मुझे एक वचन देना पड़ेगा।"

राजा ने कहा—"जो माँगोगे दूँगा, यदि वह मेरे लिए अनुचित न हो।"

केवटराज बोले—"आपके बाद हस्तिनापुर के राज-सिंहासन पर मेरी लड़की का पुत्र बैठेगा, इस बात का आप मुझे वचन दे सकते हैं?"

केवटराज की शर्त राजा शांतनु को नागवार लगी। गंगा-सुत को छोड़कर अन्य किसी को राजगद्दी पर बैठाने की कल्पना तक उनसे न हो सकी। निराश और उद्विग्न मन से वह नगर की ओर लौट आए। किसी से कुछ कह भी न सके। पर चिंता उनके मन को कीड़े की तरह कुतर-कुतरकर खाने लगी।

देवव्रत ने देखा कि उसके पिता के मन में कोई-न-कोई व्यथा समाई हुई है। एक दिन उसने शांतनु से पूछा—"पिता जी, संसार का कोई भी सुख ऐसा नहीं है, जो आपको प्राप्त न हो, फिर भी इधर कुछ दिनों से आप दुखी दिखाई दे रहे हैं। आपको किस बात की चिंता है?"

यद्यपि शांतनु ने गोलमोल बातें बताईं, फिर भी कुशाग्र-बुद्धि देवव्रत को बात समझते देर न लगी। उन्होंने राजा के सारथी से पूछताछ करके, उस दिन केवटराज से यमुना नदी के किनारे जो कुछ बातें हुई थीं, उनका पता लगा लिया। पिता जी के मन की व्यथा जानकर देवव्रत सीधे केवटराज के पास गए और उनसे कहा कि वह अपनी पुत्री सत्यवती का विवाह महाराज शांतनु से कर दें।

केवटराज ने वही शर्त दोहराई, जो उन्होंने शांतनु के सामने रखी थी।

देवव्रत ने कहा—"यदि तुम्हारी आपत्ति का कारण यही है, तो मैं वचन देता हूँ कि मैं राज्य का लोभ नहीं करूँगा। सत्यवती का पुत्र ही मेरे पिता के बाद राजा बनेगा।"

केवटराज इससे संतुष्ट न हुए। उन्होंने और दूर की सोची। बोले—"आर्यपुत्र, इस बात का मुझे पूरा भरोसा है कि आप अपने वचन पर अटल रहेंगे, किंतु आपकी संतान से मैं वैसी आशा कैसे रख सकता हूँ? आप जैसे वीर का पुत्र भी तो वीर ही होगा। बहुत संभव है कि वह मेरे नाती से राज्य छीनने का प्रयत्न करे। इसके लिए आपके पास क्या उत्तर है?"

केवटराज का प्रश्न अप्रत्याशित था। उसे संतुष्ट करने का यही अर्थ हो सकता था कि देवव्रत अपने भविष्य का भी बलिदान कर दें, किंतु पितृभक्त देवव्रत इससे ज़रा भी विचलित नहीं हुए। गंभीर स्वर में उन्होंने यह कहा–"मैं जीवनभर विवाह नहीं करूँगा! आजन्म ब्रह्मचारी रहूँगा! मेरे संतान ही न होगी! अब तो तुम संतुष्ट हो?"

किसी को आशा न थी कि तरुण कुमार ऐसी कठोर प्रतिज्ञा करेंगे। देवव्रत ने भयंकर प्रतिज्ञा की थी, इसलिए उस दिन से उनका नाम ही भीष्म पड़ गया। केवटराज ने सानंद अपनी पुत्री को देवव्रत के साथ विदा किया।

सत्यवती से शांतनु के दो पुत्र हुए–चित्रांगद और विचित्रवीर्य। शांतनु के देहावसान पर चित्रांगद हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठे और उनके युद्ध में मारे जाने पर विचित्रवीर्य। विचित्रवीर्य की दो रानियाँ थीं–अंबिका और अंबालिका। अंबिका के पुत्र थे धृतराष्ट्र और अंबालिका के पांडु। धृतराष्ट्र के पुत्र कौरव कहलाए और पांडु के पांडव।

महात्मा भीष्म, शांतनु के बाद से कुरुक्षेत्र-युद्ध का अंत होने तक उस विशाल राजवंश के सामान्य कुलनायक और पूज्य बने रहे। शांतनु के बाद कुरुवंश का क्रम यह रहा–

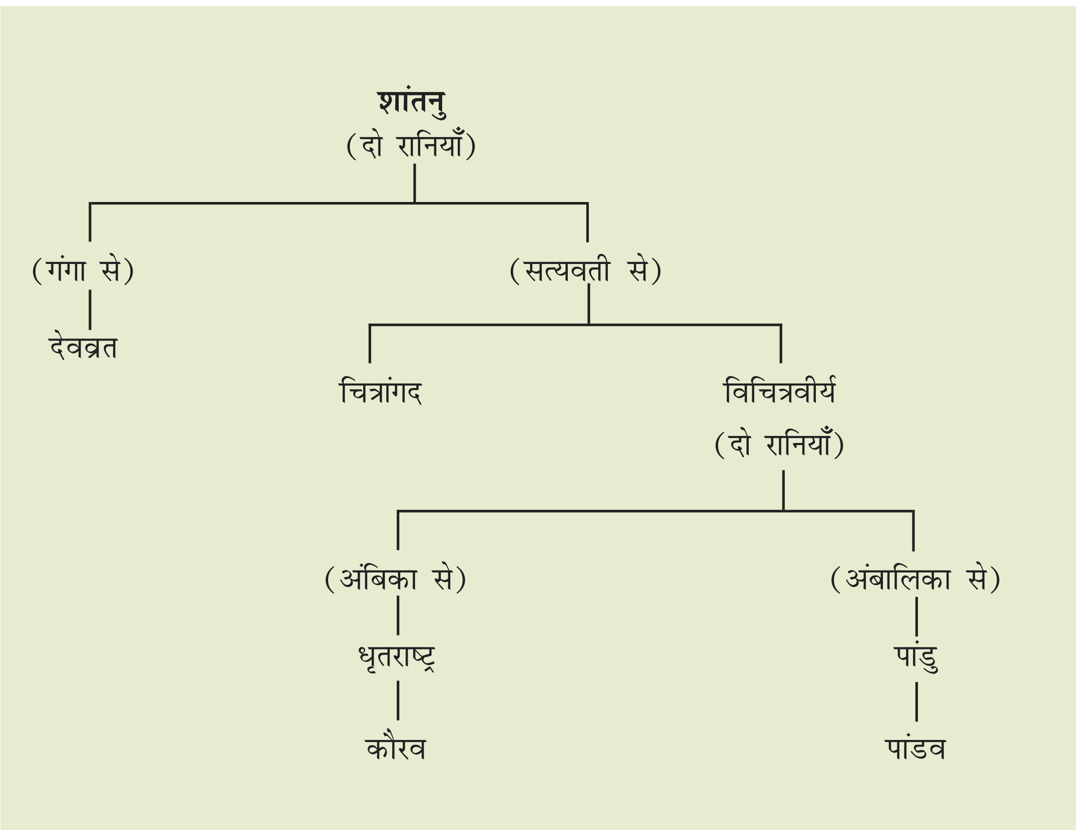

0751CH04

4 अंबा और भीष्म

सत्यवती के पुत्र चित्रांगद बड़े ही वीर, परंतु स्वेच्छाचारी थे। एक बार किसी गंधर्व के साथ युद्ध हुआ, उसमें वह मारे गए। उनके कोई पुत्र न था, इसलिए उनके छोटे भाई विचित्रवीर्य हस्तिनापुर की राजगद्दी पर बैठे। विचित्रवीर्य की आयु उस समय बहुत छोटी थी, इस कारण उनके बालिग होने तक राज-काज भीष्म को ही सँभालना पड़ा।

जब विचित्रवीर्य विवाह के योग्य हुए, तो भीष्म को उनके विवाह की चिंता हुई। उन्हें खबर लगी कि काशिराज की कन्याओं का स्वयंवर होनेवाला है। यह जानकर भीष्म बड़े खुश हुए और स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिए काशी रवाना हो गए।

देश-विदेश के अनेक राजकुमार उस स्वयंवर में भाग लेने के लिए आए थे। राजपुत्रियों को पाने के लिए आपस में बड़ी स्पर्धा थी।

क्षत्रियों में भीष्म की प्रतिज्ञा की प्रतिष्ठा अद्वितीय थी। उनके महान त्याग और भीषण प्रतिज्ञा का हाल सब जानते थे। इसलिए जब वह स्वयंवर-मंडप में प्रविष्ट हुए, तो राजकुमारों ने सोचा कि वह सिर्फ़ स्वयंवर देखने के लिए आए होंगे। परंतु जब स्वयंवर में सम्मिलित होनेवालों में भीष्म ने भी अपना नाम दिया, तो अन्य कुमारों को निराश होना पड़ा। उनको क्या पता था कि दृढ़व्रती भीष्म अपने लिए नहीं, वरन् अपने भाई के लिए स्वयंवर में सम्मिलित हुए हैं।

सभा में खलबली मच गई। चारों ओर से भीष्म पर फब्तियाँ कसी जाने लगीं—"माना कि भरतवंशी भीष्म बड़े बुद्धिमान और विद्वान हैं, स्वयंवर से इन्हें क्या मतलब? इनके प्रण का क्या हुआ? जीवनभर ब्रह्मचारी रहने की इन्होंने जो प्रतिज्ञा की थी, क्या वह झूठी थी?" इस भाँति सब राजकुमारों ने भीष्म की हँसी उड़ाई, यहाँ तक कि काशिराज की कन्याओं ने भी भीष्म की तरफ़ से दृष्टि फेर ली और उनकी अवहेलना-सी करके आगे की ओर चल दीं।

भीष्म इस अवहेलना को सह न सके। उन्होंने सभी राजकुमारों को हराकर तीनों राजकन्याओं को बलपूर्वक रथ पर बैठा लिया और हस्तिनापुर को चल दिए। सौभदेश का राजा शाल्व बड़ा वीर था। काशिराज की सबसे बड़ी कन्या अंबा उस पर अनुरुक्त थी और उसको मन-ही-मन अपना पति मान चुकी थी। शाल्व ने भीष्म के रथ का पीछा किया और उसको रोकने का प्रयत्न किया। इस पर भीष्म और शाल्व के बीच घोर युद्ध छिड़ गया। भीष्म ने उसे हरा दिया, किंतु काशिराज की कन्याओं की प्रार्थना पर उसे जीवित ही छोड़ दिया।

भीष्म काशिराज की कन्याओं को लेकर हस्तिनापुर पहुँचे। विचित्रवीर्य के विवाह की सारी तैयारी हो जाने के बाद जब कन्याओं को विवाह-मंडप में ले जाने का समय आया, तो काशिराज की बड़ी बेटी अंबा एकांत में भीष्म से बोली—"गांगेय, मैंने अपने मन में सौभदेश के राजा शाल्व को अपना पति मान लिया था। इसी बीच आप मुझे बलपूर्वक यहाँ ले आए। मेरे मन की बात जानने के बाद आप मेरे बारे में अब जो उचित समझें, करें।"

भीष्म को अंबा की बात जँची। उन्होंने अंबा को उसकी इच्छानुसार उचित प्रबंध के साथ शाल्व के पास भेज दिया और अंबा की दोनों बहनों–अंबिका और अंबालिका–का विचित्रवीर्य के साथ विवाह करा दिया।

अंबा अपने मनोनीत वर सौभराज शाल्व के पास गई और सारा वृत्तांत कह सुनाया। उसने कहा–"राजन्! मैं आपको ही अपना पति मान चुकी हूँ। मेरे अनुरोध से भीष्म ने मुझे आपके पास भेजा है। आप मुझे अपनी पत्नी स्वीकार कर लें।"

पर शाल्व न माना। उसने अंबा से कहा–"सारे राजकुमारों के सामने भीष्म ने मुझे युद्ध में पराजित किया और तुम्हें बलपूर्वक हरण करके ले गए। इतने बड़े अपमान के बाद मैं तुम्हें कैसे स्वीकार कर सकता हूँ। तुम्हारे लिए अब उचित यही है कि तुम भीष्म के पास जाओ और उनकी सलाह के मुताबिक ही काम करो।"

बेचारी अंबा हस्तिनापुर लौट आई और भीष्म को सारा हाल कह सुनाया। उन्होंने विचित्रवीर्य से कहा–"वत्स, राजा शाल्व अंबा को स्वीकार नहीं करता। इससे विदित होता है कि उसकी इच्छा अंबा को पत्नी बनाने की नहीं थी। अब उसके साथ तुम्हारा ब्याह करने में कोई आपत्ति नहीं रही है।" पर विचित्रवीर्य अंबा के साथ ब्याह करने को राजी न हुए।

बेचारी अंबा न इधर की रही, न उधर की। कोई और रास्ता न देख वह भीष्म से बोली–"गांगेय, मैं तो दोनों ओर से ही गई। मेरा कोई भी सहारा न रहा। आप ही मुझे हर लाए थे, अतः अब आपका यह कर्तव्य है कि आप मेरे साथ ब्याह कर लें।"

भीष्म ने उसकी बात ध्यान से सुनी और अपनी प्रतिज्ञा की याद दिलाकर बोले–"अपनी प्रतिज्ञा तो मैं नहीं तोड़ सकता।" उन्होंने अंबा की परिस्थिति समझकर विचित्रवीर्य से दोबारा आग्रह किया, पर वह न माना। भीष्म ने अंबा को फिर समझाया और कहा कि सौभराज शाल्व के ही पास जाओ और एक बार फिर प्रार्थना करो। लाचार अंबा फिर शाल्व के पास गई और उसकी बहुत मिन्नतें कीं, लेकिन दूसरे की जीती हुई कन्या को स्वीकार करने से सौभराज ने साफ़ इंकार कर दिया। अंबा इस प्रकार छह साल तक हस्तिनापुर और सौभदेश के बीच ठोकरें खाती फिरी। उसने अपने इस सारे दुख का कारण भीष्म को ही समझा। उन पर उसे बहुत क्रोध आया और प्रतिहिंसा की आग उसके मन में जलने लगी।

भीष्म से बदला लेने की इच्छा से वह कई राजाओं के पास गई और उनको अपना दुखड़ा सुनाया। भीष्म से युद्ध करके उनका वध करने की उसने राजाओं से प्रार्थना की, पर राजा लोग तो भीष्म के नाम से ही डरते थे। किसी में इतना साहस न था कि भीष्म से युद्ध करे। क्षत्रियों से एकदम निराश होकर अंबा ने तपस्वी ब्राह्मणों की शरण ली। तपस्वियों ने कहा–"बेटी, तुम परशुराम के पास जाओ। वे तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी करेंगे।" तब ऋषियों की सलाह पर अंबा परशुराम के पास गई।

अंबा की करुण कहानी सुनकर परशुराम का हृदय पिघल गया। उन्होंने दयार्द्र स्वर में कहा–"काशिराज-कन्ये, तुम मुझसे क्या चाहती हो?"

अंबा ने कहा–"ब्राह्मण-वीर, मेरी प्रार्थना केवल यही है कि आप भीष्म से युद्ध करें। मैं आपसे भीष्म के वध की भीख माँगती हूँ।"

परशुराम को अंबा की प्रार्थना पसंद आई। बड़े उत्साह के साथ वह भीष्म के पास गए और उन्हें युद्ध के लिए ललकारा। दोनों कुशल योद्धा थे और धनुष-विद्या के जानकार भी। दोनों ही जितेंद्रिय और ब्रह्मचारी थे। समान योद्धाओं की टक्कर थी। कई दिनों तक युद्ध होता रहा, फिर भी हार-जीत का निश्चय न हो सका। अंत में परशुराम ने हार मान ली और उन्होंने अंबा से कहा—"जो कुछ मेरे वश में था, कर चुका। अब तुम्हारे लिए यही उचित है कि तुम भीष्म ही की शरण लो।"

पर अंबा ऐसी बातों से कब विचलित होनेवाली थी? उसने वन में जाकर फिर तपस्या शुरू की और तपोबल से स्त्री-रूप छोड़कर पुरुष बन गई और उसने अपना नाम शिखंडी रख लिया।

जब कौरवों और पांडवों के बीच कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्ध हुआ, तो भीष्म के विरुद्ध लड़ते समय शिखंडी रथ के आगे बैठा था और अर्जुन ठीक उसके पीछे। ज्ञानी भीष्म को यह बात मालूम थी कि अंबा ही शिखंडी का रूप धारण किए हुए है। इसलिए उन्होंने उस पर बाण चलाना अपनी वीरोचित प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझा। शिखंडी को आगे करके अर्जुन ने भीष्म पितामह पर हमला किया और अंत में उन पर विजय प्राप्त की। जब भीष्म आहत होकर पृथ्वी पर गिरे, तब जाकर अंबा का क्रोध शांत हुआ।

0751CH05

5 विदुर

विचित्रवीर्य की रानी अंबालिका की दासी की कोख से धर्मदेव का जन्म हुआ था। वह ही आगे चलकर विदुर के नाम से प्रख्यात हुए। धर्मशास्त्र तथा राजनीति में उनका ज्ञान अथाह था। वह बड़े निःस्पृह थे। क्रोध उन्हें छू तक नहीं गया था। युवावस्था में ही पितामह भीष्म ने उनके विवेक तथा ज्ञान से प्रभावित होकर उन्हें राजा धृतराष्ट्र का प्रधानमंत्री नियुक्त कर दिया था। जिस समय धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को जुआ खेलने की अनुमति दी, विदुर ने धृतराष्ट्र से बहुत आग्रहपूर्वक निवेदन किया—"राजन्, मुझे आपका यह काम ठीक नहीं जँचता। इस खेल के कारण आपके बेटों में आपस में वैरभाव बढ़ेगा। इसको रोक दीजिए।"

धृतराष्ट्र विदुर की बात से प्रभावित हुए और अपने बेटे दुर्योधन को अकेले में बुलाकर उसे इस कुचाल से रोकने का प्रयत्न किया। बड़े प्रेम के साथ वह बोले—"गांधारी के लाल! विदुर बड़ा बुद्धिमान है और हमेशा हमारा भला चाहता आया है। उसका कहा मानने में ही हमारी भलाई है। वत्स! जुआ खेलने का विचार छोड़ दो। विदुर कहता है कि उससे विरोध बहुत बढ़ेगा और वह राज्य के नाश का कारण हो जाएगा। छोड़ दो इस विचार को।"

धृतराष्ट्र ने अपने बेटे को सही रास्ते पर लाने का प्रयत्न किया, किंतु दुर्योधन न माना। वृद्ध धृतराष्ट्र अपने बेटे से बहुत स्नेह करते थे। अपनी इस कमज़ोरी के कारण उसका अनुरोध

वह टाल न सके और युधिष्ठिर को जुआ खेलने का न्यौता भेजना ही पड़ा।

धृतराष्ट्र पर बस न चला, तो विदुर युधिष्ठिर के पास गए। उनको जुआ खेलने को जाने से रोकने का प्रयत्न किया। युधिष्ठिर ने विदुर की सब बातें ध्यानपूर्वक सुनीं और बड़े आदर के साथ बोले–"चाचा जी! मैं यह सब मानता हूँ, पर जब काका धृतराष्ट्र बुलाएँ, तो मैं कैसे इंकार करूँ? युद्ध या खेल के लिए बुलाए जाने पर न जाना क्षत्रिय का धर्म तो नहीं है।"

यह कहकर युधिष्ठिर क्षत्रिय-कुल की मर्यादा रखने के लिए जुआ खेलने गए।

6 कुंती

0751CH06

यदुवंश के प्रसिद्ध राजा शूरसेन श्रीकृष्ण के पितामह थे। इनके पृथा नाम की कन्या थी। उसके रूप और गुणों की कीर्ति दूर-दूर तक फैली हुई थी। शूरसेन के फुफेरे भाई कुंतिभोज के कोई संतान न थी। शूरसेन ने कुंतिभोज को वचन दिया था कि उनकी जो पहली संतान होगी, उसे कुंतिभोज को गोद दे देंगे। उसी के अनुसार शूरसेन ने कुंतिभोज को पृथा गोद दे दी। कुंतिभोज के यहाँ आने पर पृथा का नाम कुंती पड़ गया।

कुंती के बचपन में ऋषि दुर्वासा एक बार कुंतिभोज के यहाँ पधारे। कुंती ने एक वर्ष तक बड़ी सावधानी व सहनशीलता के साथ उनकी सेवा-सुश्रूषा की। उसकी सेवा-टहल से दुर्वासा ऋषि प्रसन्न हुए और उसे उपदेश दिया और बोले–"कुंतिभोज-कन्ये, तुम किसी भी देवता का ध्यान करोगी, तो वह अपने ही समान एक तेजस्वी पुत्र तुम्हें प्रदान करेगा।"

इस प्रकार सूर्य के संयोग से कुमारी कुंती ने सूर्य के समान तेजस्वी एवं सुंदर बालक को जन्म दिया। जन्मजात कवच और कुंडलों से शोभित वही बालक आगे चलकर शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ कर्ण के नाम से विख्यात हुआ। लेकिन अब कुंती को लोक-निंदा का डर हुआ। उसने बच्चे को छोड़ देना ही उचित समझा। इसलिए बच्चे को एक पेटी में बड़ी सावधानी के साथ बंद करके उसे गंगा की धारा में बहा दिया। बहुत आगे जाकर अधिरथ नाम के एक सारथी की नज़र उस पर पड़ी। उसने पेटी निकाली और खोलकर देखा, तो उसमें एक सुंदर बच्चा सोता हुआ मिला। अधिरथ निःसंतान था। बालक को पाकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ। सूर्य-पुत्र कर्ण इस तरह एक सारथी के घर पलने लगा।

इधर कुंती विवाह के योग्य हुई। राजा कुंतिभोज ने उसका स्वयंवर रचा। उससे विवाह करने की इच्छा से देश-विदेश के अनेक राजकुमार स्वयंवर में आए। हस्तिनापुर के राजा पांडु भी स्वयंवर में शरीक हुए थे। कुंती ने उन्हीं के गले में वरमाला डाल दी। महाराज पांडु का कुंती से ब्याह हो गया और वह कुंती सहित हस्तिनापुर लौट आए।

उन दिनों राजवंशों में एक से अधिक ब्याह करने की प्रथा प्रचलित थी। इसी रिवाज के

अनुसार पितामह भीष्म की सलाह से महाराज पांडु ने मद्रराज की कन्या माद्री से भी ब्याह कर लिया।

एक दिन महाराजा पांडु वन में शिकार खेलने गए। वहीं जंगल में हिरण के रूप में एक ऋषि-दम्पति भी विहार कर रहे थे। पांडु ने अपने तीर से हिरण को मार गिराया। उनको यह पता नहीं था कि ये ऋषि-दम्पति हैं। ऋषि ने मरते-मरते पांडु को शाप दिया। ऋषि के शाप से पांडु को बड़ा दुख हुआ, साथ ही वह अपनी भूल से खिन्न होकर नगर को लौटे और पितामह भीष्म तथा विदुर को राज्य का भार सौंपकर अपनी पत्नियों के साथ वन में चले गए और वहाँ पर ब्रह्मचारी जैसा जीवन व्यतीत करने लगे। कुंती ने देखा कि महाराज को संतान-लालसा तो है, लेकिन ऋषि के शापवश वह संतानोत्पत्ति नहीं कर सकते। अतः उसने विवाह से पूर्व दुर्वासा ऋषि से पाए वरदानों का पांडु से ज़िक्र किया।

उनके अनुरोध से कुंती और माद्री ने देवताओं के अनुग्रह से पाँच पांडवों को जन्म दिया। वन में ही पाँचों का जन्म हुआ और वहीं तपस्वियों के संग वे पलने लगे। अपनी दोनों स्त्रियों तथा बेटों के साथ महाराज पांडु कई बरस वन में रहे।

वसंत ऋतु थी। सारा वन आनंद में डूबा हुआ-सा प्रतीत हो रहा था। महाराज पांडु माद्री के साथ प्रकृति की इस उद्गारमय सुषमा को निहार रहे थे। ऋषि के शाप का असर हो गया। तत्काल उनकी मृत्यु हो गई। माद्री के दुख का पार न रहा। पति की मृत्यु का वह कारण बनी, यह सोचकर पांडु के साथ ही वह भी मर गई।

इस दुर्घटना से कुंती और पाँचों पांडवों के शोक की सीमा न रही। पर वन के ऋषि-मुनियों ने बहुत समझा-बुझाकर उनको शांत किया और उन्हें हस्तिनापुर ले जाकर पितामह भीष्म के सुपुर्द किया। युधिष्ठिर की उम्र उस समय सोलह वर्ष की थी।

हस्तिनापुर के लोगों ने जब ऋषियों से सुना कि वन में पांडु की मृत्यु हो गई है, तो उनके शोक की सीमा न रही। पोते की मृत्यु पर शोक करती हुई सत्यवती अपनी दोनों विधवा पुत्रवधुओं– अंबिका और अंबालिका को साथ लेकर वन में चली गई। तीनों वृद्धाएँ कुछ दिन तपस्या करती रहीं और बाद में स्वर्ग सिधार गईं। अपने कुल में जो छल-प्रपंच तथा अन्याय होने वाले थे, उन्हें न देखना ही संभवतः उन्होंने उचित समझा।

0751CH07

7 भीम

पाँचों पांडव तथा धृतराष्ट्र के सौ पुत्र, जो कौरव कहलाते थे, हस्तिनापुर में साथ-साथ रहने लगे। खेलकूद, हँसी-मज़ाक सब में वे साथ ही रहते थे। शरीर-बल में पांडु का पुत्र भीम सबसे बढ़कर था। खेलों में वह दुर्योधन और उसके भाइयों को खूब तंग किया करता। यद्यपि भीम मन में किसी से वैर नहीं रखता था और बचपन के जोश के कारण ही ऐसा करता था, फिर भी

दुर्योधन तथा उसके भाइयों के मन में भीम के प्रति द्वेषभाव बढ़ने लगा। इधर सभी बालक उचित समय आने पर कृपाचार्य से अस्त्र-विद्या के साथ-साथ अन्य विद्याएँ भी सीखने लगे। विद्या सीखने में भी पांडव कौरवों से आगे ही रहते थे। इससे कौरव और खीझने लगे। दुर्योधन पांडवों को हर प्रकार से नीचा दिखाने का प्रयत्न करता रहता था। भीम से तो उसकी ज़रा भी नहीं पटती थी। एक बार सब कौरवों ने आपस में सलाह करके यह निश्चय किया कि भीम को गंगा में डुबोकर मार डाला जाए और उसके मरने पर युधिष्ठिर-अर्जुन आदि को कैद करके बंदी बना लिया जाए। दुर्योधन ने सोचा कि ऐसा करने से सारे राज्य पर उनका अधिकार हो जाएगा।

एक दिन दुर्योधन ने धूमधाम से जल-क्रीड़ा का प्रबंध किया और पाँचों पांडवों को उसके लिए न्यौता दिया। बड़ी देर तक खेलने और तैरने के बाद सबने भोजन किया और अपने-अपने डेरों में जाकर सो गए। दुर्योधन ने छल से भीम के भोजन में विष मिला दिया था। सब लोग खूब खेले-तैरे थे, सो थक-थकाकर सो गए। भीम को विष के कारण गहरा नशा हो गया। वह डेरे पर भी न पहुँच पाया और नशे में चूर होकर गंगा-किनारे रेत में ही गिर गया। उसी हालत में दुर्योधन ने लताओं

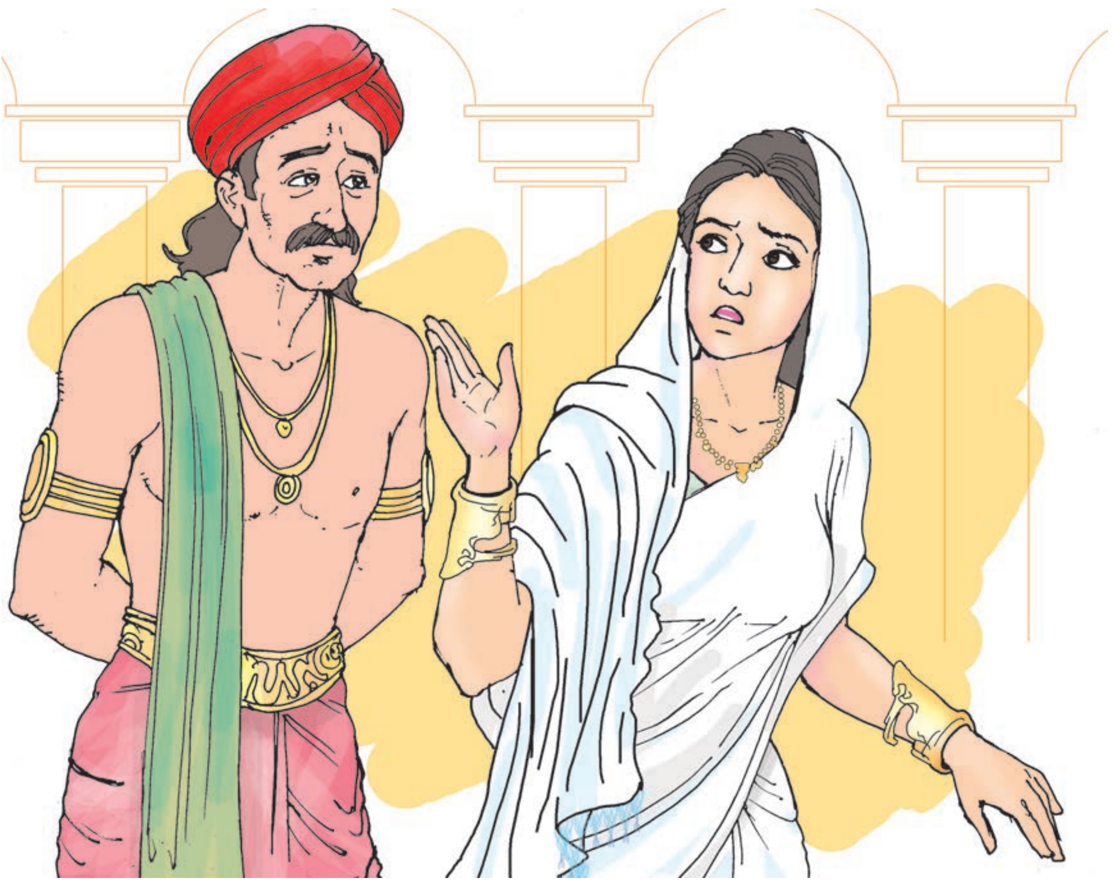

से उसके हाथ-पैर बाँधकर उसे गंगा में बहा दिया। लताओं से जकड़ा हुआ भीम का शरीर गंगा की धारा में बहता हुआ दूर निकल गया।

इधर दुर्योधन मन-ही-मन यह सोचकर खुश हो रहा था कि भीम का तो काम ही तमाम हो गया होगा। जब युधिष्ठिर आदि जागे और भीम को न पाया, तो चारों भाइयों ने मिलकर सारा जंगल तथा गंगा का वह किनारा, जहाँ जल-क्रीड़ा की थी, छान डाला। पर भीम का कहीं पता न चला। अंत में निराश होकर दुखी हृदय से वे अपने महल को लौट आए। इतने में ही क्या देखते हैं कि भीम झूमता-झामता चला आ रहा है। पांडवों और कुंती के आनंद का ठिकाना न रहा! युधिष्ठिर, कुंती आदि ने भीम को गले से लगा लिया। पर यह सब हाल देखकर कुंती को बड़ी चिंता हुई। उसने विदुर को बुला भेजा और अकेले में उनसे बोली–"दुष्ट दुर्योधन ज़रूर कोई-न-कोई चाल चल रहा है। राज्य के लोभ में वह भीम को मार डालना चाहता है। मुझे इसकी चिंता हो रही है।"

राजनीति-कुशल विदुर कुंती को समझाते हुए बोले–"तुम्हारा कहना सही है, परंतु कुशल इसी में है कि इस बात को अपने तक ही रखो। प्रकट रूप से दुर्योधन की निंदा कदापि न करना, नहीं तो इससे उसका द्वेष और बढ़ेगा।"

इस घटना से भीम बहुत उत्तेजित हो गया था। उसे समझाते हुए युधिष्ठिर ने कहा–"भाई भीम, अभी समय नहीं आया है। तुम्हें अपने आपको सँभालना होगा। इस समय तो हम पाँचों भाइयों को यही करना है कि किसी प्रकार एक-दूसरे की रक्षा करते हुए बचे रहें।"

भीम के वापस आ जाने पर दुर्योधन को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसका हृदय और जलने लगा।

0751CH08

8 कर्ण

पांडवों ने पहले कृपाचार्य से और बाद में द्रोणाचार्य से अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा पाई। उनको जब विद्या में काफ़ी निपुणता प्राप्त हो गई, तो एक भारी समारोह किया गया, जिसमें सबने अपने कौशल का प्रदर्शन किया। सारे नगरवासी इस समारोह को देखने आए थे। तरह-तरह के खेल हुए और हरेक राजकुमार यही चाहता था कि वही सबसे बढ़कर निकले। आपस में प्रतिस्पर्धा बड़े ज़ोर की थी, परंतु तीर चलाने में पांडु-पुत्र अर्जुन का कोई सानी न था। अर्जुन ने धनुष-विद्या में कमाल का खेल दिखाया। उसकी अद्‌भुत चतुरता को देखकर सभी दर्शक और राजवंश के सभी उपस्थित लोग दंग रह गए। यह देखकर दुर्योधन का मन ईर्ष्या से जलने लगा। अभी खेल हो ही रहा था कि इतने में रंगभूमि के द्वार पर खम ठोंकते हुए एक रोबीला और तेजस्वी युवक मस्तानी चाल से आकर अर्जुन के सामने खड़ा हो गया। यह युवक और कोई नहीं, अधिरथ द्वारा पोषित कुंती-पुत्र कर्ण ही था, लेकिन उसके कुंती-पुत्र होने की बात किसी को मालूम न थी।

रंगभूमि में आते ही उसने अर्जुन को ललकारा—"अर्जुन! जो भी करतब तुमने यहाँ दिखाए हैं, उनसे बढ़कर कौशल मैं दिखा सकता हूँ। क्या तुम इसके लिए तैयार हो?"

इस चुनौती को सुनकर दर्शक-मंडली में बड़ी खलबली मच गई, पर ईर्ष्या की आग से जलनेवाले दुर्योधन को बड़ी राहत मिली। वह बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने तपाक से कर्ण का स्वागत किया और उसे छाती से लगाकर बोला—"कहो कर्ण, कैसे आए? बताओ, हम तुम्हारे लिए क्या कर सकते हैं?"

कर्ण बोला—"राजन्! मैं अर्जुन से द्वंद्व युद्ध और आपसे मित्रता करना चाहता हूँ।"

कर्ण की चुनौती को सुनकर अर्जुन को बड़ा तैश आया। वह बोला—"कर्ण! सभा में जो बिना बुलाए आते हैं और जो बिना किसी के पूछे बोलने लगते हैं, वे निंदा के योग्य होते हैं।"

यह सुनकर कर्ण ने कहा—"अर्जुन, यह उत्सव केवल तुम्हारे लिए ही नहीं मनाया जा रहा है। सभी प्रजाजन इसमें भाग लेने का अधिकार रखते हैं। व्यर्थ डींगें मारने से फ़ायदा क्या? चलो, तीरों से बात कर लें!"

जब कर्ण ने अर्जुन को यों चुनौती दी, तो दर्शकों ने तालियाँ बजाईं। उनके दो दल बन गए। एक दल अर्जुन को बढ़ावा देने लगा और दूसरा कर्ण को। इसी प्रकार वहाँ इकट्ठी स्त्रियों के भी दो दल बन गए। कुंती ने कर्ण को देखते ही पहचान लिया और भय तथा लज्जा के मारे मूर्च्छित-सी हो गई। उसकी यह हालत देखकर विदुर ने दासियों को बुलाकर उसे चेत करवाया।

इसी बीच कृपाचार्य ने उठकर कर्ण से कहा—"अज्ञात वीर! महाराज पांडु का पुत्र और कुरुवंश का वीर अर्जुन तुम्हारे साथ द्वंद्व युद्ध करने के लिए तैयार है, किंतु तुम पहले अपना परिचय तो दो! तुम कौन हो, किसके पुत्र हो, किस राजकुल को तुम विभूषित करते हो? द्वंद्व युद्ध बराबर वालों में ही होता है। कुल का परिचय पाए बगैर राजकुमार कभी द्वंद्व करने को तैयार नहीं होते।" कृपाचार्य की यह बात सुनकर कर्ण का सिर झुक गया।

कर्ण को इस तरह देखकर दुर्योधन उठ खड़ा हुआ और बोला—"अगर बराबरी की बात है, तो मैं आज ही कर्ण को अंगदेश का राजा बनाता हूँ!" यह कहकर दुर्योधन ने तुरंत पितामह भीष्म एवं पिता धृतराष्ट्र से अनुमति लेकर वहीं रंगभूमि में ही राज्याभिषेक की सामग्री मँगवाई और कर्ण का राज्याभिषेक करके उसे अंगदेश का राजा घोषित कर दिया।

इतने में बूढ़ा सारथी अधिरथ, जिसने कर्ण को पाला था, लाठी टेकता हुआ और भय के मारे काँपता हुआ सभा में प्रविष्ट हुआ। कर्ण, जो अभी-अभी अंगदेश का नरेश बना दिया गया था, उसको देखते ही धनुष नीचे रखकर उठ खड़ा हुआ और पिता मानकर बड़े आदर के साथ उसके आगे सिर नवाया। बूढ़े ने भी 'बेटा' कहकर उसे गले लगा लिया। यह देखकर भीम खूब कहकहा मारकर हँस पड़ा और बोला—"सारथी के बेटे, धनुष छोड़कर हाथ में चाबुक लो, चाबुक! वही तुम्हें शोभा देगा। तुम भला कब से अर्जुन के साथ द्वंद्व युद्ध करने के योग्य हो गए?"

यह सब देखकर सभा में खलबली मच गई। इस समय सूरज भी डूब रहा था। इस कारण सभा विसर्जित हो गई। मशालों और दीपकों की

रोशनी में दर्शक-वृंद अपनी-अपनी पसंद के अनुसार अर्जुन, कर्ण और दुर्योधन की जय बोलते जाते थे।

इस घटना के बहुत समय बाद एक बार इंद्र बूढ़े ब्राह्मण के वेश में अंग-नरेश कर्ण के पास आए और उसके जन्मजात कवच और कुंडलों की भिक्षा माँगी। इंद्र को डर था कि भावी युद्ध में कर्ण की शक्ति से अर्जुन पर विपत्ति आ सकती है। इस कारण कर्ण की ताकत कम करने की इच्छा से ही उन्होंने उससे यह भिक्षा माँगी थी।

कर्ण को सूर्यदेव ने पहले ही सचेत कर दिया था कि उसे धोखा देने के लिए इंद्र ऐसी चाल चलनेवाले हैं, परंतु कर्ण इतना दानी था कि किसी के कुछ माँगने पर वह मना कर ही नहीं सकता था। इस कारण यह जानते हुए भी कि भिखारी के वेश में इंद्र धोखा कर रहे हैं, कर्ण ने अपने जन्मजात कवच और कुंडल निकालकर भिक्षा में दे दिए।

इस अद्‌भुत दानवीरता को देखकर इंद्र चकित रह गए। कर्ण की प्रशंसा करते हुए बोले—"कर्ण, तुमसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुम जो भी वरदान चाहो, माँगो।"

कर्ण ने देवराज से कहा—"आप प्रसन्न हैं, तो शत्रुओं का संहार करनेवाला अपना 'शक्ति' नामक शस्त्र मुझे प्रदान करें!"

बड़ी प्रसन्नता के साथ अपना वह शस्त्र कर्ण को देते हुए देवराज ने कहा—"युद्ध में तुम जिस किसी को लक्ष्य करके इसका प्रयोग करोगे, वह अवश्य मारा जाएगा, परंतु एक ही बार तुम इसका प्रयोग कर सकोगे। तुम्हारे शत्रु को मारने के बाद यह मेरे पास वापस आ जाएगा।" इतना कहकर इंद्र चले गए।

एक बार कर्ण को परशुराम जी से ब्रह्मास्त्र सीखने की इच्छा हुई। इसलिए वह ब्राह्मण के वेश में परशुराम जी के पास गया और प्रार्थना की कि उसे शिष्य स्वीकार करने की कृपा करें। परशुराम जी ने उसे ब्राह्मण समझकर शिष्य बना लिया। इस प्रकार छल से कर्ण ने ब्रह्मास्त्र चलाना सीख लिया।

एक दिन परशुराम कर्ण की जाँघ पर सिर रखकर सो रहे थे। इतने में एक काला भौंरा कर्ण की जाँघ के नीचे घुस गया और काटने लगा। कीड़े के काटने से कर्ण को बहुत पीड़ा हुई और जाँघ से लहू की धारा बहने लगी, पर कर्ण ने इस भय से कि कहीं गुरुदेव की नींद न खुल जाए, जाँघ को ज़रा भी हिलाया-डुलाया नहीं। जब खून से परशुराम की देह भीगने लगी, तो उनकी नींद खुली। उन्होंने देखा कि कर्ण की जाँघ से खून बह रहा है। यह देखकर परशुराम बोले—"बेटा, सच बताओ, तुम कौन हो?" तब कर्ण असली बात न छिपा सका। उसने स्वीकार कर लिया कि वह ब्राह्मण नहीं, बल्कि सूत-पुत्र है। यह जानकर परशुराम को बड़ा क्रोध आया। अतः उन्होंने उसी घड़ी कर्ण को शाप देते हुए कहा—"चूँकि तुमने अपने गुरु को ही धोखा दिया है, इसलिए जो विद्या तुमने मुझसे सीखी है, वह अंत समय में तुम्हारे किसी काम न आएगी। ऐन वक्त पर तुम उसे भूल जाओगे और रणक्षेत्र में तुम्हारे रथ का पहिया पृथ्वी में धँस जाएगा।"

परशुराम जी का यह शाप झूठा न हुआ। जीवनभर कर्ण को उनकी सिखाई हुई ब्रह्मास्त्र-विद्या याद रही, पर कुरुक्षेत्र के मैदान में अर्जुन से युद्ध करते समय कर्ण को वह याद न रही। दुर्योधन के घनिष्ठ मित्र कर्ण ने अंत समय तक

कौरवों का साथ न छोड़ा। कुरुक्षेत्र के युद्ध में भीष्म तथा आचार्य द्रोण के आहत हो जाने के बाद दुर्योधन ने कर्ण को ही कौरव-सेना का सेनापति बनाया था। कर्ण ने दो दिन तक अद्‌भुत कुशलता के साथ युद्ध का संचालन किया। आखिर जब शापवश उसके रथ का पहिया ज़मीन में धँस गया और वह धनुष-बाण रखकर ज़मीन में धँसा हुआ पहिया निकालने का प्रयत्न करने लगा, तभी अर्जुन ने उस महारथी पर प्रहार किया। माता कुंती ने जब यह सुना, तो उसके दुख का पार न रहा।

9 द्रोणाचार्य

0751CH09

आचार्य द्रोण महर्षि भरद्वाज के पुत्र थे। पांचाल-नरेश का पुत्र द्रुपद भी द्रोण के साथ ही भरद्वाज-आश्रम में शिक्षा पा रहा था। दोनों में गहरी मित्रता थी। कभी-कभी राजकुमार द्रुपद उत्साह में आकर द्रोण से यहाँ तक कह देता था कि पांचाल देश का राजा बन जाने पर मैं आधा राज्य तुम्हें दे दूँगा। शिक्षा समाप्त होने पर द्रोणाचार्य ने कृपाचार्य की बहन से ब्याह कर लिया। उससे उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम उन्होंने अश्वत्थामा रखा। द्रोण अपनी पत्नी और पुत्र को बड़ा प्रेम करते थे।

द्रोण बड़े गरीब थे। वह चाहते थे कि धन प्राप्त किया जाए और अपनी पत्नी व पुत्र के साथ सुख से रहा जाए। उन्हें खबर लगी कि परशुराम अपनी सारी संपत्ति गरीब ब्राह्मणों को बाँट रहे हैं, तो भागे-भागे उनके पास गए, लेकिन उनके पहुँचने तक परशुराम अपनी सारी संपत्ति वितरित कर चुके थे और वन-गमन की तैयारी कर रहे थे। द्रोण को देखकर वह बोले—"ब्राह्मण-श्रेष्ठ! आपका स्वागत है। पर मेरे पास जो कुछ था, वह मैं बाँट चुका हूँ। अब यह मेरा शरीर और धनुर्विद्या ही है। बताइए, मैं आपके लिए क्या करूँ?"

तब द्रोण ने उनसे सारे अस्त्रों के प्रयोग तथा रहस्य सिखाने की प्रार्थना की। परशुराम ने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली और द्रोण को धनुर्विद्या की पूरी शिक्षा दे दी।

कुछ समय बाद राजकुमार द्रुपद के पिता का देहावसान हो गया और द्रुपद राजगद्दी पर बैठा। द्रोणाचार्य को जब द्रुपद के पांचाल देश की राजगद्दी पर बैठने की खबर लगी, तो यह सुनकर वह बड़े प्रसन्न हुए और राजा द्रुपद से मिलने पांचाल देश को चल पड़े। उन्हें गुरु के आश्रम में द्रुपद की लड़कपन में की गई बातचीत याद थी। सोचा, यदि आधा राज्य न भी देगा तो कम-से-कम कुछ धन तो ज़रूर ही देगा। यह आशा लेकर द्रोणाचार्य राजा द्रुपद के पास पहुँचे और बोले—"मित्र द्रुपद, मुझे पहचानते हो न? मैं तुम्हारा बालपन का मित्र द्रोण हूँ।"

ऐश्वर्य के मद में मत्त हुए राजा द्रुपद को द्रोणाचार्य का आना बुरा लगा और द्रोण का अपने साथ मित्र का-सा व्यवहार करना तो और भी अखरा। वह द्रोण पर गुस्सा हो गया और बोला—"ब्राह्मण, तुम्हारा यह व्यवहार सज्जनोचित

नहीं है। मुझे मित्र कहकर पुकारने का तुम्हें साहस कैसे हुआ? सिंहासन पर बैठे हुए एक राजा के साथ एक दरिद्र प्रजाजन की मित्रता कभी हुई है? तुम्हारी बुद्धि कितनी कच्ची है! लड़कपन में लाचारी के कारण हम दोनों को जो साथ रहना पड़ा, उसके आधार पर तुम द्रुपद से मित्रता का दावा करने लगे! दरिद्र की धनी के साथ, मूर्ख की विद्वान के साथ और कायर की वीर के साथ मित्रता कहीं हो सकती है? मित्रता बराबरी की हैसियतवालों में ही होती है। जो किसी राज्य का स्वामी न हो, वह राजा का मित्र कभी नहीं हो सकता।" द्रुपद की इन कठोर गर्वोक्तियों को सुनकर द्रोणाचार्य बड़े लज्जित हुए और उन्हें क्रोध भी बहुत आया। उन्होंने निश्चय किया कि मैं इस अभिमानी राजा को सबक सिखाऊँगा और बचपन में जो मित्रता की बात हुई थी, उसे पूरा करके चैन लूँगा। वह हस्तिनापुर पहुँचे और वहाँ अपनी पत्नी के भाई कृपाचार्य के यहाँ गुप्त रूप से रहने लगे।

एक रोज़ हस्तिनापुर के राजकुमार नगर से बाहर कहीं गेंद खेल रहे थे कि इतने में उनकी गेंद एक कुएँ में जा गिरी। युधिष्ठिर उसको निकालने का प्रयत्न करने लगे, तो उनकी अँगूठी भी कुएँ में गिर पड़ी। सभी राजकुमार कुएँ के चारों ओर झाँक-झाँककर देखने लगे, पर उसे निकालने का उपाय उनको नहीं सूझता था। एक कृष्ण वर्ण का ब्राह्मण मुसकराता हुआ यह सब चुपचाप देख रहा था। राजकुमारों को उसका पता नहीं था। राजकुमारो को अचरज में डालता हुआ वह बोला–"राजकुमारो! बोलो, मैं गेंद निकाल दूँ, तो तुम मुझे क्या दोगे?"

"ब्राह्मणश्रेष्ठ! आप गेंद निकाल देंगे, तो कृपाचार्य के घर आपकी बढ़िया दावत करेंगे।" युधिष्ठिर ने हँसते हुए कहा। तब द्रोणाचार्य ने पास में पड़ी हुई सींक उठा ली और उसे पानी में फेंका। सींक गेंद को ऐसे जाकर लगी, जैसे तीर और फिर इस तरह लगातार कई सींकें वे कुएँ में डालते गए। सींकें एक-दूसरे के सिरे से चिपकती गईं। जब आखिरी सींक का सिरा कुएँ के बाहर तक पहुँच गया, तो द्रोणाचार्य ने उसे पकड़कर खींच लिया और गेंद निकल आई। सब राजकुमार आश्चर्य से यह करतब देख रहे थे। उन्होंने ब्राह्मण से विनती की कि युधिष्ठिर की अँगूठी भी निकाल दीजिए।

द्रोण ने तुरंत धनुष चढ़ाया और कुएँ में तीर मारा। पलभर में बाण अँगूठी को अपनी नोंक में लिए हुए ऊपर आ गया। द्रोणाचार्य ने अँगूठी युधिष्ठिर को दे दी। यह चमत्कार देखकर राजकुमारों को और भी ज़्यादा अचरज हुआ। उन्होंने द्रोण के आगे आदरपूर्वक सिर नवाया और हाथ जोड़कर पूछा–"महाराज! हमारा प्रणाम स्वीकार कीजिए और हमें अपना परिचय दीजिए कि आप कौन हैं? हम आपकी क्या सेवा कर सकते हैं? हमें आज्ञा दीजिए।"

द्रोण ने कहा–"राजकुमारो! यह सारी घटना सुनाकर पितामह भीष्म से ही मेरा परिचय प्राप्त कर लेना।"

राजकुमारों ने जाकर पितामह भीष्म को सारी बात सुनाई, तो भीष्म ताड़ गए कि हो-न-हो वे सुप्रसिद्ध आचार्य द्रोण ही होंगे। यह सोचकर उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब से राजकुमारों की अस्त्र-शिक्षा द्रोणाचार्य के ही हाथों पूरी कराई जाए। बड़े सम्मान से उन्होंने द्रोण का स्वागत किया और राजकुमारों को आदेश दिया कि वे गुरु द्रोण से ही धनुर्विद्या सीखा करें। कुछ समय

बाद जब राजकुमारों की शिक्षा पूरी हो गई, तो द्रोणाचार्य ने उनसे गुरु-दक्षिणा के रूप में पांचालराज द्रुपद को कैद कर लाने के लिए कहा। उनकी आज्ञानुसार पहले दुर्योधन और कर्ण ने द्रुपद के राज्य पर धावा बोल दिया, पर पराक्रमी द्रुपद के आगे वे न ठहर सके। हारकर वापस आ गए। तब द्रोण ने अर्जुन को भेजा। अर्जुन ने पांचालराज की सेना को तहस-नहस कर दिया और राजा द्रुपद को उनके मंत्री सहित कैद करके आचार्य के सामने ला खड़ा किया।

द्रोणाचार्य ने मुसकराते हुए द्रुपद से कहा–"हे वीर! डरो नहीं। किसी प्रकार की विपत्ति की आशंका न करो। लड़कपन में तुम्हारी-हमारी मित्रता थी। साथ-साथ खेले-कूदे, उठे-बैठे। बाद में जब तुम राजा बन गए, तो ऐश्वर्य के मद में आकर तुम मुझे भूल गए और मेरा अपमान किया। तुमने कहा था कि राजा ही राजा के साथ मित्रता कर सकता है। इसी कारण मुझे युद्ध करके तुम्हारा राज्य छीनना पड़ा। परंतु मैं तो तुम्हारे साथ मित्रता ही करना चाहता हूँ। इसलिए आधा राज्य तुम्हें वापस लौटा देता हूँ, क्योंकि मेरा मित्र बनने के लिए भी तो तुम्हें राज्य चाहिए न! मित्रता तो बराबरी की हैसियतवालों में ही हो सकती है।"

द्रोणाचार्य ने इसे अपने अपमान का काफ़ी बदला समझा और उन्होंने द्रुपद को बड़े सम्मान के साथ विदा किया। इस प्रकार राजा द्रुपद का गर्व चूर हो गया, लेकिन बदले से घृणा दूर नहीं होती। किसी के अभिमान को ठेस लगने पर जो पीड़ा होती है, उसे सहन करना बड़ा

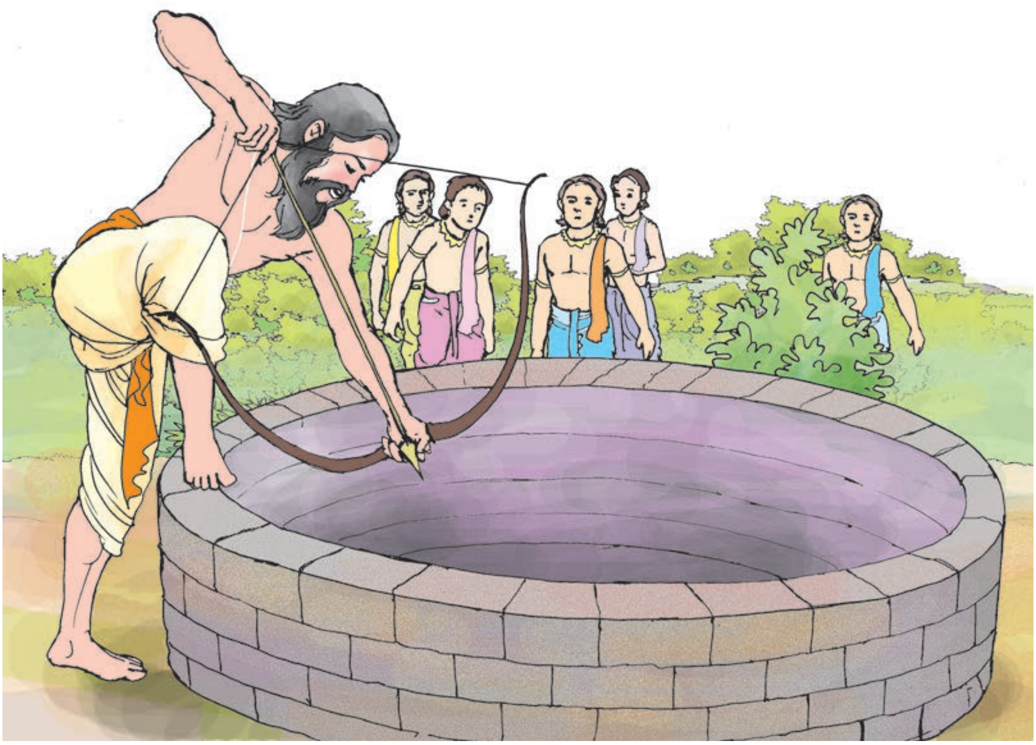

कठिन होता है। द्रोण से बदला लेने की भावना द्रुपद के जीवन का लक्ष्य बन गई। उसने कई कठोर व्रत और तप इस कामना से किए कि उसे एक ऐसा पुत्र हो, जो द्रोण को मार सके। साथ ही एक ऐसी कन्या हो, जो अर्जुन को ब्याही जा सके। आखिर उसकी कामना पूरी हुई। उसके धृष्टद्युम्न नामक एक पुत्र हुआ और द्रौपदी नाम की एक कन्या। आगे चलकर कुरुक्षेत्र की रणभूमि में अजेय द्रोणाचार्य इसी धृष्टद्युम्न के हाथों मारे गए थे।

0751CH10

10 लाख का घर

भीमसेन का शरीर-बल और अर्जुन की युद्ध-कुशलता देखकर दुर्योधन की जलन दिन-पर-दिन बढ़ती ही गई। वह ऐसे उपाय सोचने लगा कि जिससे पांडवों का नाश हो सके। इस कुमंत्रणा में उसका मामा शकुनि और कर्ण सलाहकार बने हुए थे। बूढ़े धृतराष्ट्र बुद्धिमान थे। अपने भतीजों से उनको स्नेह भी काफ़ी था, परंतु अपने पुत्रों से उनका मोह भी अधिक था। दृढ़ निश्चय की उनमें कमी थी, पर वह किसी बात पर वह स्थिर नहीं रह सकते थे। अपने बेटे पर अंकुश रखने की शक्ति उनमें नहीं थी। इस कारण यह जानते हुए भी कि दुर्योधन कुराह पर चल रहा है, उन्होंने उसका ही साथ दिया।

इधर पांडवों की लोकप्रियता दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी। चौराहों और सभा-समाजों में लोग कहते कि राजगद्दी पर बैठने के योग्य तो युधिष्ठिर ही हैं। वे कहते थे—"धृतराष्ट्र तो जन्म से अंधे थे, इस कारण उनके छोटे भाई पांडु ही सिंहासन पर बैठे थे। उनकी अकाल मृत्यु हो जाने और पांडवों के बालक होने के कारण कुछ समय के लिए धृतराष्ट्र ने राज-काज सँभाला था। अब युधिष्ठिर बड़े हो गए हैं, तो फिर आगे धृतराष्ट्र को राज्य अपने ही अधीन रखने का क्या अधिकार है? पितामह भीष्म का तो कर्तव्य है कि वह धृतराष्ट्र से राज्य का भार युधिष्ठिर को दिला दें। युधिष्ठिर ही सारी प्रजा के साथ न्यायपूर्वक व्यवहार कर सकेंगे।"

ज्यों-ज्यों पांडवों की यह लोकप्रियता दिखाई देती थी, ईर्ष्या से वह और भी अधिक कुढ़ने लगता था।

एक दिन धृतराष्ट्र को अकेले में पाकर दुर्योधन बोला—"पिता जी, पुरवासी तरह-तरह की बातें करते हैं। जन्म से दिखाई न देने के कारण आप बड़े होते हुए भी राज्य से वंचित ही रह गए। राज-सत्ता आपके छोटे भाई के हाथ में चली गई। अब यदि युधिष्ठिर को राजा बना दिया गया, तो फिर पीढ़ियों तक हम राज्य की आशा नहीं कर सकेंगे। पिता जी, हमसे तो यह अपमान न सहा जाएगा।"

यह सुनकर राजा धृतराष्ट्र सोच में पड़ गए। बोले—"बेटा, तुम्हारा कहना ठीक है। लेकिन युधिष्ठिर के विरुद्ध कुछ करना भी तो कठिन है। युधिष्ठिर धर्मानुसार चलता है, सबसे समान स्नेह करता है, अपने पिता के समान ही गुणवान है। इस कारण प्रजाजन भी उसे बहुत चाहते हैं।"

यह सुनकर दुर्योधन बोला—"पिता जी, आपको और कुछ नहीं करना है, सिर्फ़ पांडवों को किसी-न-किसी बहाने वारणावत के मेले में भेज दीजिए। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ इतनी सी बात से हमारा कुछ भी बिगाड़ नहीं होगा।"

इस बीच अपने पिता पर और अधिक दबाव डालने के इरादे से दुर्योधन ने कुछ कूटनीतिज्ञों को अपने पक्ष में मिला लिया। वे बारी-बारी से धृतराष्ट्र के पास जाकर पांडवों के विरुद्ध उन्हें उकसाने लगे। इनमें कर्णिक नाम का ब्राह्मण मुख्य था, जो शकुनि का मंत्री था। उसने धृतराष्ट्र को राजनीतिक चालों का भेद बताते हुए अनेक उदाहरणों एवं प्रमाणों से अपनी दलीलों की पुष्टि की। अंत में बोला—"राजन्! जो ऐश्वर्यवान है, वही संसार में श्रेष्ठ माना जाता है। यह बात ठीक है कि पांडव आपके भतीजे हैं, परंतु वे बड़े शक्ति-संपन्न भी हैं। इस कारण अभी से चौकन्ने हो जाइए। आप पांडु-पुत्रों से अपनी रक्षा कर लीजिए, वरना पीछे पछताइएगा।"

कर्णिक की बातों पर धृतराष्ट्र विचार कर रहे थे कि दुर्योधन ने आकर कहा—"पिता जी, आप अगर किसी तरह पांडवों को समझाकर वारणावत भेज दें, तो नगर और राज्य पर हमारा शासन पक्का हो जाएगा। फिर पांडव बड़ी खुशी से लौट सकते हैं और हमें उनसे कोई खतरा नहीं रहेगा।"

दुर्योधन और उसके साथी धृतराष्ट्र को रात-दिन इसी तरह पांडवों के विरुद्ध कुछ-न-कुछ कहते-सुनाते रहते और उन पर अपना दबाव डालते रहते थे। आखिर धृतराष्ट्र कमज़ोर पड़ गए और उनको लाचार होकर अपने बेटे की सलाह माननी पड़ी। दुर्योधन के पृष्ठ-पोषकों ने वारणावत की सुंदरता और खूबियों के बारे में पांडवों को बहुत ललचाया। कहा कि वारणावत में एक भारी मेला होनेवाला है, जिसकी शोभा देखते ही बनेगी। उनकी बातें सुन-सुनकर खुद पांडवों को भी वारणावत जाने की उत्सुकता हुई, यहाँ तक कि उन्होंने स्वयं आकर धृतराष्ट्र से वहाँ जाने की अनुमति माँगी।

धृतराष्ट्र की अनुमति पाकर पांडव बड़े खुश हुए और भीष्म आदि से विदा लेकर माता कुंती के साथ वारणावत के लिए रवाना हो गए।

पांडवों के चले जाने की खबर पाकर दुर्योधन की खुशी की तो सीमा न रही। वह अपने दोनों साथियों—कर्ण एवं शकुनि के साथ बैठकर पांडवों तथा कुंती का काम तमाम करने का उपाय सोचने लगा। उसने अपने मंत्री पुरोचन को बुलाकर गुप्त रूप से सलाह दी और एक योजना बनाई। पुरोचन ने यह सारा काम पूर्ण सफलता के साथ पूरा करने का वचन दिया और तुरंत वारणावत के लिए रवाना हो गया। एक शीघ्रगामी रथ पर बैठकर पुरोचन पांडवों से बहुत पहले वारणावत जा पहुँचा। वहाँ जाकर उसने पांडवों के ठहरने के लिए सन, घी, मोम, तेल, लाख, चरबी आदि जल्दी आग पकड़नेवाली चीज़ों को मिट्टी में मिलाकर एक सुंदर भवन बनवाया। इस बीच अगर पांडव वहाँ जल्दी पहुँच गए, तो कुछ समय उनके ठहरने के लिए एक और जगह का प्रबंध पुरोचन ने कर रखा था। दुर्योधन की योजना यह थी कि कुछ दिनों तक पांडवों को लाख के भवन में आराम से रहने दिया जाए और जब वे पूर्ण रूप से नि:शंक हो जाएँ, तब रात में भवन में आग लगा दी जाए, जिससे पांडव तो जलकर भस्म हो जाएँ और कौरवों पर भी कोई दोष न लगा सके।

0751CH11

11 पांडवों की रक्षा

पाँचों पांडव माता कुंती के साथ वारणावत के लिए चल पड़े। उनके हस्तिनापुर छोड़कर वारणावत जाने की खबर पाकर नगर के लोग उनके साथ हो लिए। बहुत दूर जाने के बाद युधिष्ठिर का कहा मानकर नगरवासियों को लौट जाना पड़ा। दुर्योधन के षड्यंत्र और उससे बचने का उपाय विदुर ने युधिष्ठिर को इस तरह गूढ़ भाषा में सिखा दिया था कि जिससे दूसरे लोग समझ न सकें। वारणावत के लोग पांडवों के आगमन की खबर पाकर बड़े खुश हुए और उनके वहाँ पहुँचने पर उन्होंने बड़े ठाठ से उनका स्वागत किया। जब तक लाख का भवन बनकर तैयार हुआ, पांडव दूसरे घरों में रहते रहे, जहाँ पुरोचन ने पहले से ही उनके ठहरने का प्रबंध कर रखा था। लाख का भवन बनकर तैयार हो गया, तो पुरोचन उन्हें उसमें ले गया। भवन में प्रवेश करते ही युधिष्ठिर ने उसे खूब ध्यान से देखा। विदुर की बातें उन्हें याद थीं। ध्यान से देखने पर युधिष्ठिर को पता चल गया कि यह घर जल्दी आग लगनेवाली चीज़ों से बना हुआ है। युधिष्ठिर ने भीम को भी यह भेद बता दिया; पर साथ ही उसे सावधान करते हुए कहा–"यद्यपि यह साफ़ मालूम हो गया है कि यह स्थान खतरनाक है, फिर भी हमें विचलित नहीं होना चाहिए। पुरोचन को इस बात का ज़रा भी पता न लगे कि उसके षड्यंत्र का भेद हम पर खुल गया है। मौका पाकर हमें यहाँ से निकल भागना होगा। पर अभी हमें जल्दी से ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए, जिससे शत्रु के मन में ज़रा भी संदेह पैदा होने की संभावना हो।"

युधिष्ठिर की इस सलाह को भीमसेन सहित सब भाइयों तथा कुंती ने मान लिया। वे उसी लाख के भवन में रहने लगे। इतने में विदुर का भेजा हुआ एक सुंरग बनानेवाला कारीगर वारणावत नगर में आ पहुँचा। उसने एक दिन पांडवों को अकेले में पाकर उन्हें अपना परिचय देते हुए कहा–"आप लोगों की भलाई के लिए हस्तिनापुर से रवाना होते समय विदुर ने युधिष्ठिर से सांकेतिक भाषा में जो कुछ कहा था, वह बात मैं जानता हूँ। यही मेरे सच्चे मित्र होने का सबूत है। आप मुझ पर भरोसा रखें। मैं आप लोगों की रक्षा का प्रबंध करने के लिए आया हूँ।"

इसके बाद वह कारीगर महल में पहुँच गया और गुप्त रूप से कुछ दिनों में ही उसमें एक सुरंग बना दी। इस रास्ते से पांडव महल के अंदर से नीचे–ही–नीचे चहारदीवारी और गहरी खाई को लाँघकर सुरक्षित बेखटके बाहर निकल सकते थे। यह काम इतने गुप्त रूप से और इस खूबी से हुआ कि पुरोचन को अंत तक इस बात की खबर न होने पाई। पुरोचन ने लाख के भवन के द्वार पर ही अपने रहने के लिए स्थान बनवा लिया था। इस कारण पांडवों को भी सारी रात हथियार लेकर चौकन्ने रहना पड़ता था।

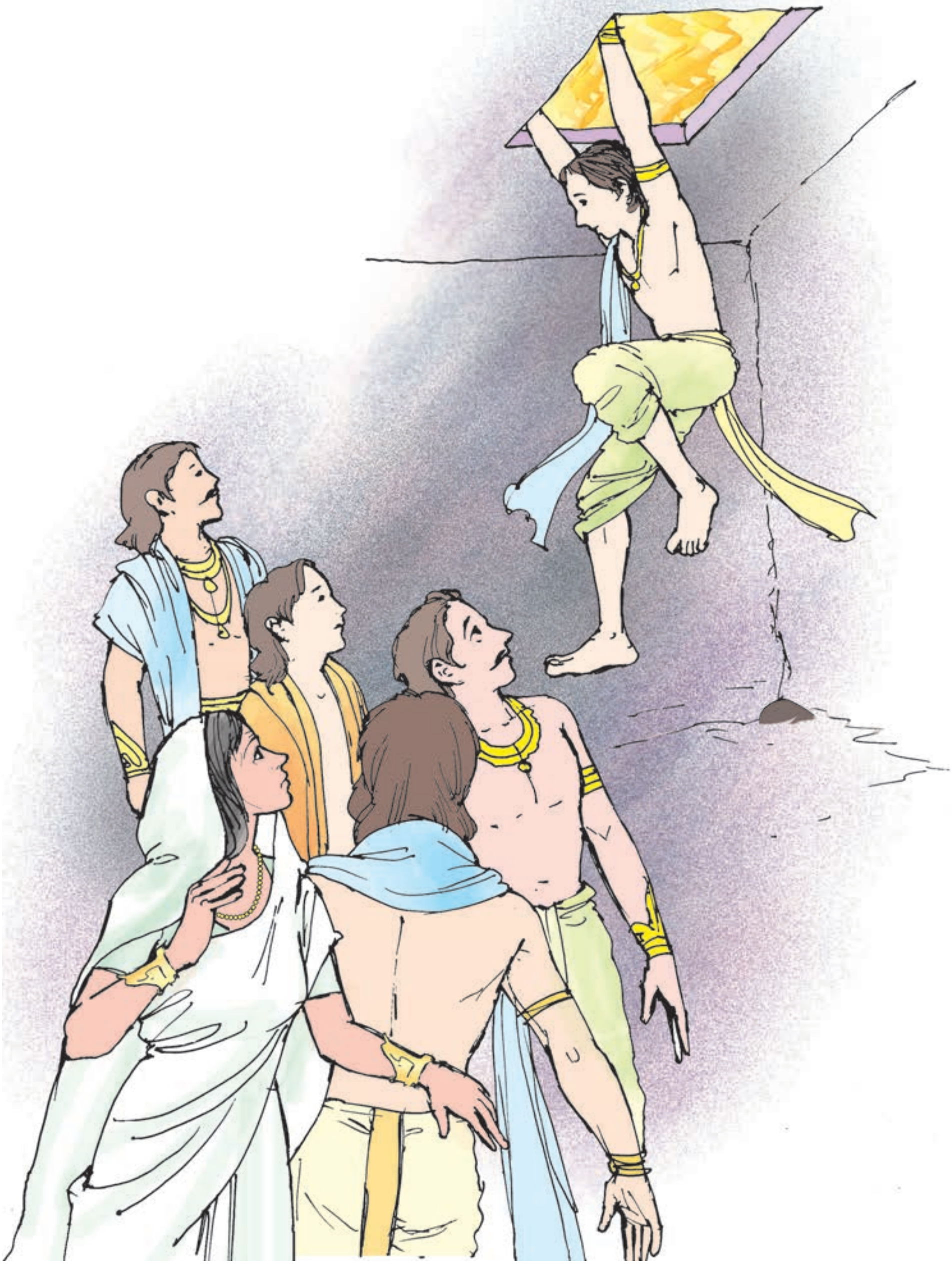

एक दिन पुरोचन ने सोचा कि अब पांडवों का काम तमाम करने का समय आ गया है। समझदार युधिष्ठिर उसके रंग-ढंग से ताड़ गए कि वह क्या सोच रहा है। युधिष्ठिर की सलाह से माता कुंती ने उसी रात को एक बड़े भोज का प्रबंध किया। नगर के सभी लोगों को भोजन कराया गया। बड़ी धूमधाम रही, मानो कोई बड़ा उत्सव हो। खूब खा-पीकर भवन के सब कर्मचारी गहरी नींद में सो गए। पुरोचन भी सो गया। आधी रात के समय भीमसेन ने भवन में कई जगह आग लगा दी और फिर पाँचों भाई माता कुंती के साथ सुरंग के रास्ते अँधेरे में रास्ता टटोलते-टटोलते बाहर निकल गए। भवन से बाहर वे निकले ही थे कि आग ने सारे भवन को अपनी लपटों में ले लिया। पुरोचन के रहने के मकान में भी आग लग गई। सारे नगर के लोग इकट्ठे हो गए और पांडवों के भवन को भयंकर आग की भेंट होते देखकर हाहाकार मचाने लगे। कौरवों के अत्याचार से जनता क्षुब्ध हो उठी और तरह-तरह से कौरवों की निंदा करने लगी। लोग क्रोध में अनाप-शनाप बकने लगे, हाय-तौबा मचाने लगे और उनके देखते-देखते सारा भवन जलकर राख हो गया। पुरोचन का मकान और स्वयं पुरोचन भी आग की भेंट हो गया।

वारणावत के लोगों ने तुरंत ही हस्तिनापुर में खबर पहुँचा दी कि पांडव जिस भवन में ठहराए गए थे, वह जलकर राख हो गया है और भवन में कोई भी जीता नहीं बचा। धृतराष्ट्र और उनके बेटों ने पांडवों की मृत्यु पर बड़ा शोक मनाया। वे गंगा-किनारे गए और पांडवों तथा कुंती को जलांजलि दी। फिर सब मिलकर बड़े ज़ोर-ज़ोर से रोते और विलाप करते हुए घर लौटे। परंतु दार्शनिक विदुर ने शोक को मन ही में दबा लिया। अधिक शोक-प्रदर्शन न किया। इसके अलावा विदुर को यह भी पक्का विश्वास था कि पांडव लाख के भवन से बचकर निकल गए होंगे। पितामह भीष्म तो मानो शोक के सागर ही में थे, पर उनको विदुर ने धीरज बँधाया और पांडवों के बचाव के लिए किए गए अपने सारे प्रबंध का हाल बताकर उन्हें चिंतामुक्त कर दिया।

लाख के घर को जलता हुआ छोड़कर पाँचों भाई माता कुंती के साथ बच निकले और जंगल में पहुँच गए। जंगल में पहुँचने पर भीमसेन ने देखा कि रातभर जगे होने तथा चिंता और भय से पीड़ित होने के कारण चारों भाई बहुत थके हुए हैं। माता कुंती की दशा तो बड़ी ही दयनीय थी। बेचारी थककर चूर हो गई थी। सो महाबली भीम ने माता को उठाकर अपने कंधे पर बैठा लिया और नकुल एवं सहदेव को कमर पर ले लिया। युधिष्ठिर और अर्जुन को दोनों हाथों से पकड़ लिया और वह उस जंगली रास्ते में उन्मत्त हाथी के समान झाड़-झंखाड़ और पेड़-पौधों को इधर-उधर हटाता व रौंदता हुआ तेज़ी से चलने लगा। जब वे सब गंगा के किनारे पहुँचे, तो वहाँ विदुर की भेजी हुई एक नाव मिली। युधिष्ठिर ने मल्लाह से सांकेतिक प्रश्न करके जाँच लिया कि वह मित्र है। वे लोग अगले दिन शाम होने तक चलते ही रहे, ताकि किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँच जाएँ।

सूरज डूब गया और रात हो चली थी। चारों तरफ़ अँधेरा छा गया। कुंती और पांडव एक तो थकावट के मारे चूर हो रहे थे, ऊपर से प्यास और नींद भी उन्हें सताने लगी। चक्कर-सा आने लगा। एक पग भी आगे बढ़ना असंभव हो गया। भीम के सिवाए और सब भाई वहीं ज़मीन पर बैठ गए। कुंती से तो बैठा भी नहीं गया। वह दीनभाव से बोली–"मैं तो प्यास से मरी जा रही हूँ। अब मुझसे बिलकुल चला नहीं जाता। धृतराष्ट्र के बेटे चाहें तो भले ही मुझे यहाँ से उठा ले जाएँ, मैं तो यहीं पड़ी रहूँगी।" यह कहकर कुंती वहीं ज़मीन पर गिरकर बेहोश हो गई।

माता और भाइयों का यह हाल देखकर क्षोभ के मारे भीमसेन का हृदय दग्ध हो उठा। वह उस भयानक जंगल में बेधड़क घुस गया और इधर-उधर घूम-घामकर उसने एक जलाशय का पता लगा ही लिया। उसने पानी लाकर माता व भाइयों की प्यास बुझाई। पानी पीकर चारों भाई और माता कुंती ऐसे सोए कि उन्हें अपनी सुध-बुध तक न रही। अकेला भीमसेन मन-ही-मन कुछ सोचता हुआ चिंतित भाव से बैठा रहा। पाँचों भाई माता कुंती को लिए अनेक विघ्न-बाधाओं का सामना करते और बड़ी मुसीबतें झेलते हुए उस जंगली रास्ते में आगे बढ़ते ही चले गए। वे कभी माता को उठाकर तेज़ चलते, कभी थके-माँदे बैठ जाते। कभी एक-दूसरे से होड़ लगाकर रास्ता पार करते। वे ब्राह्मण ब्रह्मचारियों का वेश धरकर एकचक्रा नगरी में जाकर एक ब्राह्मण के घर में रहने लगे।

माता कुंती के साथ पाँचों पांडव एकचक्रा नगरी में भिक्षा माँगकर अपनी गुज़र करके दिन बिताने लगे। भिक्षा के लिए जब पाँचों भाई निकल जाते, तो कुंती का जी बड़ा बेचैन हो उठता था। वह बड़ी चिंता से उनकी बाट जोहती रहती। उनके लौटने में ज़रा भी देर हो जाती तो कुंती के मन में तरह-तरह की आशंकाएँ उठने लगती थीं।

पाँचों भाई भिक्षा में जितना भोजन लाते, कुंती उसके दो हिस्से कर देती। एक हिस्सा भीमसेन को दे देती और बाकी आधे में से पाँच हिस्से करके चारों बेटे और खुद खा लेती थी। तिसपर भी भीमसेन की भूख नहीं मिटती थी। हमेशा ही भूखा रहने के कारण वह दिन-पर-दिन दुबला होने लगा। भीमसेन का यह हाल देखकर कुंती और युधिष्ठिर बड़े चिंतित रहने लगे। थोड़े से भोजन से पेट न भरता था, सो भीमसेन ने एक कुम्हार से दोस्ती कर ली। उसने मिट्टी आदि खोदने में मदद करके उसको खुश कर दिया। कुम्हार भीम से बड़ा खुश हुआ और एक बड़ी भारी हाँडी बनाकर उसको दी। भीम उसी हाँडी को लेकर भिक्षा के लिए निकलने लगा। उसका विशाल शरीर और उसकी वह विलक्षण हाँडी देखकर बच्चे तो हँसते-हँसते लोटपोट हो जाते।

एक दिन चारों भाई भिक्षा के लिए गए। अकेला भीमसेन ही माता कुंती के साथ घर पर रहा। इतने में ब्राह्मण के घर के भीतर से बिलख-बिलखकर रोने की आवाज़ आई। अंदर जाकर देखा कि ब्राह्मण और उसकी पत्नी आँखों में आँसू भरे सिसकियाँ लेते हुए एक-दूसरे से बातें कर रहे हैं।

ब्राह्मण बड़े दुखी हृदय से अपनी पत्नी से कह रहा था—"कितनी ही बार मैंने तुम्हें समझाया कि इस अंधेर नगरी को छोड़कर कहीं और चले जाएँ, पर तुम नहीं मानीं। यही हठ करती रहीं कि यह मेरे बाप-दादा का गाँव है, यहीं रहूँगी। बोलो, अब क्या कहती हो? अपनी बेटी की भी बलि कैसे चढ़ा दूँ और पुत्र को कैसे काल कवलित होने दूँ? यदि मैं शरीर त्यागता हूँ, तो फिर इन अनाथ बच्चों का भरण-पोषण कौन करेगा? हाय! मैं अब क्या करूँ? और कुछ करने से तो अच्छा उपाय यह है कि सभी एक साथ मौत को गले लगा लें। यही अच्छा होगा।" कहते-कहते ब्राह्मण सिसक-सिसककर रो पड़ा।

ब्राह्मण की पत्नी रोती-रोती बोली—"प्राणनाथ! मुझे मरने का कोई दुख नहीं है। मेरी मृत्यु के बाद आप चाहें, तो दूसरी पत्नी ला सकते हैं। अब मुझे प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा दें, ताकि मैं राक्षस का भोजन बनूँ।"

पत्नी की ये व्यथाभरी बातें सुनकर ब्राह्मण से न रहा गया। वह बोला—"प्रिये! मुझसे बड़ा दुरात्मा और पापी कौन होगा, जो तुम्हें राक्षस की बलि चढ़ा दे और खुद जीवित रहे?"

माता-पिता को इस तरह बातें करते देख ब्राह्मण की बेटी से न रहा गया। उसने करुण स्वर में कहा—"पिताजी, अच्छा तो यह है कि राक्षस के पास आप मुझे भेज दें।" सबको इस तरह रोते देखकर ब्राह्मण का नन्हा सा बालक पास में पड़ी हुई सूखी लकड़ी हाथ में लेकर घुमाता हुआ बोला—"उस राक्षस को तो मैं ही इस लकड़ी से इस तरह ज़ोर से मार डालूँगा।"

कुंती खड़ी-खड़ी यह सब देख रही थी। अपनी बात कहने का उसने ठीक मौका देखा। वह बोली—"हे ब्राह्मण, क्या आप कृपा करके मुझे बता सकते हैं कि आप लोगों के इस असमय दुख का कारण क्या है?"

ब्राह्मण ने कहा—"देवी! सुनिए, इस नगरी के समीप एक गुफ़ा है, जिसमें बक नामक एक बड़ा अत्याचारी राक्षस रहता है। पिछले तेरह वर्षों से इस नगरी के लोगों पर वह बड़े ज़ुल्म ढा रहा है। इस देश का राजा, जो वेत्रकीय नाम के महल में रहता है, इतना निकम्मा है कि प्रजा को राक्षस के अत्याचार से बचा नहीं रहा है। इससे घबराकर नगर के लोगों ने मिलकर उससे बड़ी अनुनय-विनय की कि कोई-न-कोई नियम बना ले। बकासुर ने लोगों की यह बात मान ली और तब से इस समझौते के अनुसार यह नियम बना हुआ है कि लोग बारी-बारी से एक-एक आदमी और खाने की चीज़ें हर सप्ताह उसे पहुँचा दिया करते हैं। इस सप्ताह में उस राक्षस के खाने के लिए आदमी और भोजन भेजने की हमारी बारी है। अब तो मैंने यही सोचा है कि सबको साथ लेकर ही राक्षस के पास चला जाऊँगा। आपने पूछा सो आपको बता दिया। इस कष्ट को दूर करना तो आपके बस में भी नहीं है।"

ब्राह्मण की बात का कोई उत्तर देने से पहले कुंती ने भीमसेन से सलाह की। उसने लौटकर कहा—"विप्रवर, आप इस बात की चिंता छोड़ दें। मेरे पाँच बेटे हैं, उनमें से एक आज राक्षस के पास भोजन लेकर चला जाएगा।"

सुनकर ब्राह्मण चौंक पड़ा और बोला—"आप भी कैसी बात कहती हैं! आप हमारी अतिथि हैं। हमारे घर में आश्रय लिए हुए हैं। आपके बेटे को मौत के मुँह में मैं भेजूँ, यह कहाँ का न्याय है? मुझसे यह नहीं हो सकता।"

कुंती को डर था कि यदि यह बात फैल गई, तो दुर्योधन और उनके साथियों को पता लग जाएगा कि पांडव एकचक्रा नगरी में छिपे हुए हैं। इसीलिए उसने ब्राह्मण से इस बात को गुप्त रखने का आग्रह किया था। कुंती ने जब भीमसेन को बताया कि उसे बकासुर के पास भोजन-सामग्री लेकर जाना होगा, तो युधिष्ठिर खीझ उठे और बोले—"यह तुम कैसा दुस्साहस करने चली हो, माँ!"

युधिष्ठिर की इन कड़ी बातों का उत्तर देते हुए कुंती बोली—"बेटा युधिष्ठिर! इस ब्राह्मण के घर में हमने कई दिन आराम से बिताए हैं। जब इन पर विपदा पड़ी है, तो मनुष्य होने के नाते हमें उसका बदला चुकाना ही चाहिए। मैं बेटा भीम की शक्ति और बल से अच्छी तरह परिचित हूँ। तुम इस बात की चिंता मत करो। जो हमें वारणावत से यहाँ तक उठा लाया, जिसने हिडिंब का वध किया, उस भीम के बारे में मुझे न तो कोई डर है, न चिंता। भीम को बकासुर के पास भेजना हमारा कर्तव्य है।"

इसके बाद नियम के अनुसार नगर के लोग खाने-पीने की चीज़ें गाड़ी में रखकर ले आए। भीमसेन उछलकर गाड़ी में बैठ गया। शहर के लोग भी बाजे बजाते हुए कुछ दूर तक उसके पीछे-पीछे चले। एक निश्चित स्थान पर लोग रुक गए और अकेला भीम गाड़ी दौड़ाता हुआ आगे गया।

उधर राक्षस मारे भूख के तड़प रहा था। जब बहुत देर हो गई, तो बड़े क्रोध के साथ वह गुफ़ा के बाहर आया। देखता क्या है कि एक मोटा सा मनुष्य बड़े आराम से बैठा हुआ भोजन

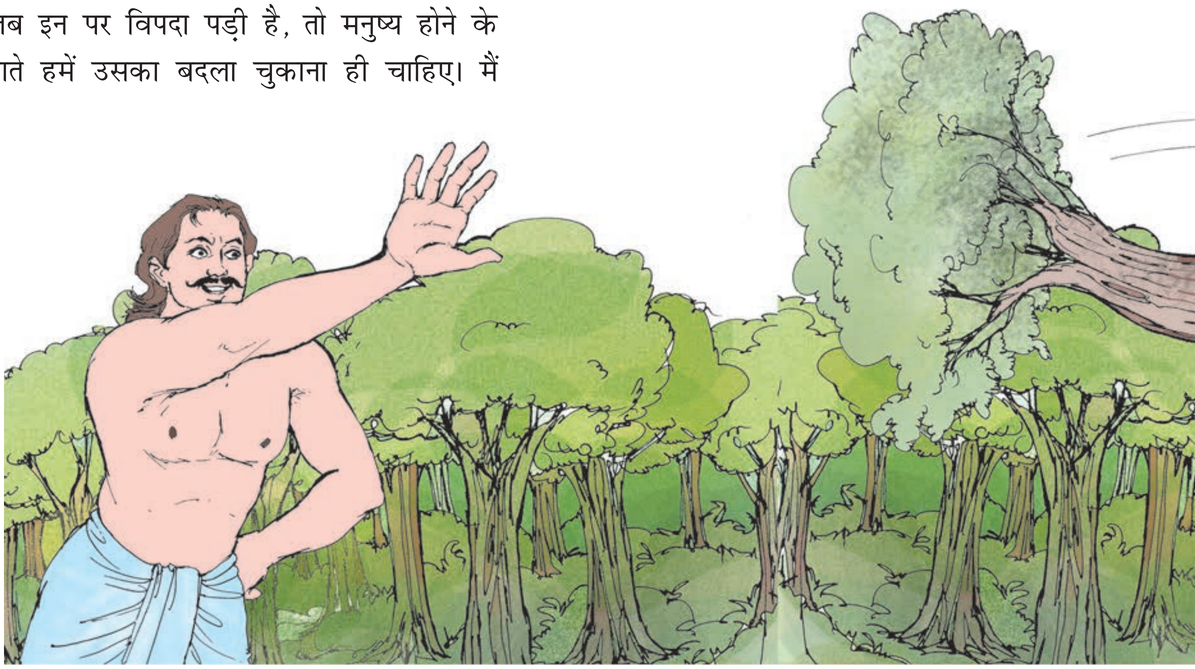

कर रहा है। यह देखकर बकासुर की आँखें क्रोध से एकदम लाल हो उठीं। इतने में भीमसेन की भी निगाह उस पर पड़ी। उसने हँसते हुए उसका नाम लेकर पुकारा। भीमसेन की यह ढिठाई देखकर राक्षस गुस्से में भर गया और तेज़ी से भीमसेन पर झपटा। भीमसेन ने बकासुर को अपनी ओर आते देखा, तो उसने उसकी तरफ़ पीठ फेर ली और कुछ भी परवाह न करके खाने में ही लगा रहा। खाली हाथों काम न बनते देखकर राक्षस ने एक बड़ा सा पेड़ जड़ से उखाड़ लिया और उसे भीमसेन पर दे मारा, परंतु भीमसेन ने बाएँ हाथ पर उसे रोक लिया। दोनों में भयानक मुठभेड़ हो गई। भीमसेन ने बकासुर को ठोकरें मारकर गिरा दिया और कहा–"दुष्ट राक्षस! ज़रा विश्राम तो करने दे।"

थोड़ी देर सुस्ताकर भीम ने फिर कहा– "अच्छा! अब उठो!" बकासुर उठकर भीम के साथ लड़ने लगा। भीमसेन ने उसको ठोकरें लगाकर फिर गिरा दिया। इस तरह बार-बार पछाड़ खाने पर भी राक्षस उठकर भिड़ जाता था। आखिर भीम ने उसे मुँह के बल गिरा दिया और उसकी पीठ पर घुटनों की मार देकर उसकी रीढ़ तोड़ डाली। राक्षस पीड़ा के मारे चीख उठा और उसके प्राण-पखेरू उड़ गए। भीमसेन उसकी लाश को घसीट लाया और उसे नगर के फाटक पर जाकर पटक दिया। फिर उसने घर आकर माँ को सारा हाल बताया।

12 द्रौपदी-स्वयंवर

0751CH12

जिस समय पांडव एकचक्रा नगरी में ब्राह्मणों के वेष में जीवन बिता रहे थे, उन्हीं दिनों पांचाल-नरेश की कन्या द्रौपदी के स्वयंवर की तैयारियाँ होने लगीं। एकचक्रा नगरी के ब्राह्मणों के झुंड पांचाल देश के लिए रवाना हुए। पांडव भी उनके साथ ही हो लिए। पाँचों भाई माता कुंती के साथ किसी कुम्हार की झोंपड़ी में आ टिके। पांचाल देश में भी पांडव ब्राह्मण-वेश ही धारण किए रहे। इस कारण कोई उनको पहचान न सका। स्वयंवर-मंडप में एक वृहदाकार धनुष रखा हुआ था, जिसकी डोरी तारों की बनी हुई थी। ऊपर काफ़ी ऊँचाई पर एक सोने की मछली टँगी हुई थी। उसके नीचे एक चमकदार यंत्र बड़े वेग से घूम रहा था। राजा द्रुपद ने घोषणा की थी कि जो राजकुमार पानी में प्रतिबिंब देखकर उस भारी धनुष से तीर चलाकर ऊपर टँगे हुए निशाने (मछली) को गिरा देगा, उसी को द्रौपदी वरमाला पहनाएगी।

इस स्वयंवर के लिए दूर-दूर से अनेक वीर आए हुए थे। मंडप में सैकड़ों राजा इकट्ठे हुए थे जिनमें धृतराष्ट्र के सौ बेटे, अंग-नरेश कर्ण, श्रीकृष्ण, शिशुपाल, जरासंध आदि भी शामिल हुए थे। दर्शकों की भी भारी भीड़ थी। राजकुमार धृष्टद्युम्न घोड़े पर सवार होकर आगे आया। उसके पीछे हाथी पर सवार द्रौपदी आई। हाथ में फूलों का हार लिए हुए राजकन्या हाथी से उतरी और सभा में पदार्पण किया।

राजकुमार धृष्टद्युम्न अपनी बहन का हाथ पकड़कर उसे मंडप के बीच में ले गया। इसके बाद एक-एक करके राजकुमार उठते और धनुष पर डोरी चढ़ाते, हारते और अपमानित होकर लौट जाते। कितने ही सुप्रसिद्ध वीरों को इस तरह मुँह की खानी पड़ी। शिशुपाल, जरासंध, शल्य व दुर्योधन जैसे पराक्रमी राजकुमार तक असफल हो गए। जब कर्ण की बारी आई, तो सभा में एक लहर-सी दौड़ गई। सबने सोचा, अंग-नरेश ज़रूर सफल हो जाएँगे। कर्ण ने धनुष उठाकर खड़ा कर दिया और तानकर प्रत्यंचा भी चढ़ानी शुरू कर दी। डोरी के चढ़ाने में अभी बालभर की ही कसर रह गई थी कि इतने में धनुष का डंडा उसके हाथ से छूट गया तथा उछलकर उसके मुँह पर लगा। अपनी चोट सहलाता हुआ कर्ण अपनी जगह पर जा बैठा। इतने में उपस्थित ब्राह्मणों के बीच से एक तरुण उठ खड़ा हुआ। ब्राह्मणों की मंडली में ब्राह्मण वेषधारी अर्जुन को यों खड़ा होते देखकर सभा में बड़ी हलचल मच गई। लोगों में तरह-तरह की चर्चा होने लगी। तब अर्जुन ने धनुष हाथ में लिया और उस पर डोरी चढ़ा दी। उसने धनुष पर तीर चढ़ाया और आश्चर्यचकित लोगों को मुसकराते हुए देखा। लोग उसे देख रहे थे। उसने और देरी न करके तुरंत एक के बाद एक पाँच बाण उस घूमते हुए चक्र में मारे और हज़ारों लोगों के देखते-देखते निशाना टूटकर नीचे गिर पड़ा। सभा में कोलाहल मच गया। बाजे बज उठे।

उस समय राजकुमारी द्रौपदी की शोभा कुछ अनूठी हो गई। वह आगे बढ़ी और सकुचाते हुए

लेकिन प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मण-वेष में खड़े अर्जुन को वरमाला पहना दी। माता को यह समाचार सुनाने के लिए युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव तीनों भाई मंडप से उठकर चले गए। परंतु भीम नहीं गया। उसे भय था कि निराश राजकुमार कहीं अर्जुन को कुछ कर न बैठें। भीमसेन का अनुमान ठीक ही निकला। राजकुमारों में बड़ी हलचल मच गई। उन्होंने शोर मचाया। राजकुमारों का जोश बढ़ता गया। ऐसा प्रतीत हुआ कि भारी विप्लव मच जाएगा। यह हाल देखकर श्रीकृष्ण, बलराम और कुछ राजा विप्लव मचानेवाले राजकुमारों को समझाने लगे। वे समझाते रहे और इस बीच भीम और अर्जुन द्रौपदी को साथ लेकर कुम्हार की कुटिया की ओर चल दिए।

जब भीम और अर्जुन द्रौपदी को साथ लेकर सभा से जाने लगे, तो द्रुपद का पुत्र धृष्टद्युम्न

चुपके से उनके पीछे हो लिया। कुम्हार की कुटिया में उसने जो देखा, उससे उसके आश्चर्य की सीमा न रही। वह तुरंत लौट आया और अपने पिता से बोला—"पिता जी, मुझे तो ऐसा लगता है कि ये लोग कहीं पांडव न हों! बहन द्रौपदी उस युवक की मृगछाला पकड़े जब जाने लगी, तो मैं भी उनके पीछे हो लिया। वे एक कुम्हार की झोंपड़ी में जा पहुँचे। वहाँ अग्नि-शिखा की भाँति एक तेजस्वी देवी बैठी हुई थीं। वहाँ जो बातें हुईं, उनसे मुझे विश्वास हो गया कि वह कुंती देवी ही होनी चाहिए।"

तब राजा द्रुपद के बुलावा भेजने पर पाँचों भाई, माता कुंती और द्रौपदी को साथ लेकर राजभवन पहुँचे। युधिष्ठिर ने राजा को अपना सही परिचय दे दिया। यह जानकर कि ये पांडव हैं, राजा द्रुपद फूले न समाए। उनकी इच्छा पूरी हुई। महाबली अर्जुन मेरी बेटी के पति हो गए हैं, तो फिर द्रोणाचार्य की शत्रुता की मुझे चिंता नहीं रही! यह विचारकर उन्होंने संतोष की साँस ली। माँ की आज्ञा और सबकी सम्मति से द्रौपदी के साथ पाँचों पांडवों का विवाह हो गया।

0751CH13

13 इंद्रप्रस्थ

द्रौपदी के स्वयंवर में जो कुछ हुआ था, उसकी खबर जब हस्तिनापुर पहुँची, तो विदुर बड़े खुश हुए। धृतराष्ट्र के पास दौड़े गए और बोले—"पांडव अभी जीवित हैं। राजा द्रुपद की कन्या को स्वयंवर में अर्जुन ने प्राप्त किया है। पाँचों भाइयों ने विधिपूर्वक द्रौपदी के साथ ब्याह कर लिया है और कुंती के साथ वे सब द्रुपद के यहाँ कुशल से हैं।"

यह सुनकर धृतराष्ट्र हर्ष प्रकट करते हुए बोले—"भाई विदुर! तुम्हारी बातों से मुझे असीम आनंद हो रहा है। राजा द्रुपद की बेटी हमारी बहू बन गई है, यह बड़ा ही अच्छा हुआ।"

उधर दुर्योधन को जब मालूम हुआ कि पांडवों ने लाख के घर की भीषण आग से किसी तरह बचकर और एक बरस तक कहीं छिपे रहने के बाद अब पराक्रमी पांचालराज की कन्या से ब्याह कर लिया है और अब वे पहले से भी अधिक शक्तिशाली बन गए हैं, तो उनके प्रति उसके मन में ईर्ष्या की आग और अधिक प्रबल हो उठी। दबा हुआ वैर फिर से जाग उठा। दुर्योधन और दुःशासन ने शकुनि को अपना दुखड़ा सुनाया—"मामा, अब क्या करें? अब तो द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न और शिखंडी भी उनके साथी बन गए हैं।"

उसके बाद कर्ण और दुर्योधन धृतराष्ट्र के पास गए और एकांत में उनसे दुर्योधन ने कहा—"पिता जी, जल्दी ही हम ऐसा कोई उपाय करें, जिससे हम सदा के लिए निश्चिंत हो सकें।"

धृतराष्ट्र ने कहा, "बेटा, तुम बिलकुल ठीक कहते हो। तुम्हीं बताओ, अब क्या करना चाहिए?"

दुर्योधन ने कहा, "तो फिर हमें कोई ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे पांडव यहाँ आएँ ही

नहीं, क्योंकि यदि वे इधर आए, तो ज़रूर राज्य पर भी अपना अधिकार जमाना चाहेंगे।"

इस पर कर्ण को हँसी आ गई। उसने कहा–"दुर्योधन! अब एक साल बाहर रहने और दुनिया देख लेने से उन्हें काफ़ी अनुभव प्राप्त हो चुका है। एक शक्ति संपन्न राजा के यहाँ उन्होंने शरण ली है। तिस पर उनके प्रति तुम्हारा वैरभाव उनसे छिपा नहीं है। इसलिए छल-प्रपंच से अब काम नहीं बनेगा। आपस में फूट डालकर भी उनको हराना संभव नहीं। राजा द्रुपद धन के प्रलोभन में पड़नेवाले व्यक्ति भी नहीं हैं। लालच देकर उनको अपने पक्ष में करने का विचार बेकार है। पांडवों का साथ वे कभी नहीं छोड़ेंगे। द्रौपदी के मन में पांडवों के प्रति घृणा पैदा हो ही नहीं सकती। ऐसे विचार की ओर ध्यान देना भी ठीक नहीं है। हमारे पास केवल एक ही उपाय रह गया है और वह यह है कि पांडवों की ताकत बढ़ने से पहले उन पर हमला कर दिया जाए।" कर्ण तथा अपने बेटों की परस्पर विरोधी बातें सुनकर धृतराष्ट्र इस बारे में कोई निर्णय नहीं ले सके। वे पितामह भीष्म तथा आचार्य द्रोण को बुलाकर उनसे सलाह-मशविरा करने लगे। पांडु-पुत्रों के जीवित रहने की खबर पाकर पितामह भीष्म के मन में भी आनंद की लहरें उठ रही थीं।

भीष्म ने कहा–"बेटा! वीर पांडवों के साथ संधि करके आधा राज्य उन्हें दे देना ही उचित है।" आचार्य द्रोण ने भी यही सलाह दी। अंग-नरेश कर्ण भी इस अवसर पर धृतराष्ट्र के दरबार में उपस्थित था। पांडवों को आधा राज्य देने की सलाह उसे बिलकुल अच्छी न लगी। दुर्योधन के प्रति कर्ण के हृदय में अपार स्नेह था। इस कारण द्रोणाचार्य की सलाह सुनकर उसके क्रोध की सीमा न रही। वह धृतराष्ट्र से बोला–"राजन्! मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि आचार्य द्रोण भी आपको ऐसी कुमंत्रणा देते हैं! राजन्! शासकों का कर्तव्य है कि मंत्रणा देनेवालों की नीयत को पहले परख लें, फिर उनकी मंत्रणा पर ध्यान दें।" कर्ण की इन बातों से द्रोणाचार्य क्रोधित हो गरजकर बोले–"दुष्ट कर्ण! तुम राजा को गलत रास्ता बता रहे हो। यह निश्चित है कि यदि राजा धृतराष्ट्र ने मेरी तथा पितामह भीष्म की सलाह न मानी और तुम जैसों की सलाह पर चले, तो फिर कौरवों का नाश होनेवाला है।"

इसके बाद धृतराष्ट्र ने धर्मात्मा विदुर से सलाह ली। विदुर ने कहा–"हमारे कुल के नायक भीष्म तथा आचार्य द्रोण ने जो बताया है, वही श्रेयस्कर है। कर्ण की सलाह किसी काम की नहीं है।"

अंत में सब सोच-विचारकर धृतराष्ट्र ने पांडु के पुत्रों को आधा राज्य देकर संधि कर लेने का निश्चय किया और पांडवों को द्रौपदी तथा कुंती सहित सादर लिवा लाने के लिए विदुर को पांचाल देश भेजा। विदुर पांचाल देश को रवाना हो गए। पांचाल देश में पहुँचकर विदुर ने राजा द्रुपद को अमूल्य उपहार भेंट करके उनका सम्मान किया और राजा धृतराष्ट्र की तरफ़ से अनुरोध किया कि पांडवों को द्रौपदी सहित हस्तिनापुर जाने की अनुमति दें। विदुर का अनुरोध सुनकर राजा द्रुपद के मन में शंका हुई। उनको धृतराष्ट्र पर विश्वास न हुआ। सिर्फ़ इतना कह दिया कि पांडवों की जैसी इच्छा हो, वही करना ठीक होगा। तब विदुर ने माता कुंती के पास

जाकर अपने आने का कारण उन्हें बताया। कुंती के मन में भी शंका हुई कि कहीं पुत्रों पर फिर कोई आफ़त न आ जाए।

विदुर ने उन्हें समझाया और धीरज देते हुए कहा–"देवी, आप निश्‍चिंत रहें। आपके बेटों का कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा। वे संसार में खूब यश कमाएँगे और विशाल राज्य के स्वामी बनेंगे। आप सब बेखटके हस्तिनापुर चलिए।"

आखिर द्रुपद राजा ने भी अनुमति दे दी और विदुर के साथ कुंती और द्रौपदी समेत पांडव हस्तिनापुर को रवाना हो गए।

उधर हस्तिनापुर में पांडवों के स्वागत की बड़ी धूमधाम से तैयारियाँ होने लगीं। जैसाकि पहले ही निश्चय हो चुका था, युधिष्ठिर का यथाविधि राज्याभिषेक हुआ और आधा राज्य पांडवों के अधीन किया गया। राज्याभिषेक के उपरांत युधिष्ठिर को आशीर्वाद देते हुए धृतराष्ट्र ने कहा–"बेटा युधिष्ठिर! मेरे अपने बेटे बड़े दुरात्मा हैं। एक साथ रहने से संभव है कि तुम लोगों के बीच वैर बढ़े। इस कारण मेरी सलाह है कि तुम खांडवप्रस्थ को अपनी राजधानी बना लेना और वहीं से राज करना। खांडवप्रस्थ वह नगरी है, जो पुरु, नहुष एवं ययाति जैसे हमारे प्रतापी पूर्वजों की राजधानी रही है। हमारे वंश की पुरानी राजधानी खांडवप्रस्थ को फिर से बसाने का यश और श्रेय तुम्हीं को प्राप्त हो।"

धृतराष्ट्र के मीठे वचन मानकर पांडवों ने खांडवप्रस्थ के भग्नावशेषों पर, जोकि उस समय तक निर्जन वन बन चुका था, निपुण शिल्पकारों से एक नए नगर का निर्माण कराया। सुंदर भवनों, अभेद्य दुर्गों आदि से सुशोभित उस नगर का नाम इंद्रप्रस्थ रखा गया। इंद्रप्रस्थ की शान एवं सुंदरता ऐसी हो गई कि सारा संसार उसकी प्रशंसा करते न थकता था। अपनी राजधानी में द्रौपदी और माता कुंती के साथ पाँचों पांडव तेईस बरस तक सुखपूर्वक जीवन बिताते हुए न्यायपूर्वक राज्य करते रहे।

14 जरासंध

0751CH14

इंद्रप्रस्थ में प्रतापी पांडव न्यायपूर्वक प्रजा-पालन कर रहे थे। युधिष्ठिर के भाइयों तथा साथियों की इच्छा हुई कि अब राजसूय यज्ञ करके सम्राट-पद प्राप्त किया जाए। इस बारे में सलाह करने के लिए युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण को संदेश भेजा। जब श्रीकृष्ण को मालूम हुआ कि युधिष्ठिर उनसे मिलना चाहते हैं, तो तत्काल ही वह द्वारका से चल पड़े और इंद्रप्रस्थ पहुँचे।

युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से कहा–"मित्रों का कहना है कि मैं राजसूय यज्ञ करके सम्राट-पद प्राप्त करूँ। परंतु राजसूय यज्ञ तो वही कर सकता है, जो सारे संसार के नरेशों का पूज्य हो और उनके द्वारा सम्मानित हो। आप ही इस विषय में मुझे सही सलाह दे सकते हैं।"

युधिष्ठिर की बात शांति के साथ सुनकर श्रीकृष्ण बोले–"मगधदेश के राजा जरासंध ने

सब राजाओं को जीतकर उन्हें अपने अधीन कर रखा है। सभी उसका लोहा मान चुके हैं और उसके नाम से डरते हैं, यहाँ तक कि शिशुपाल जैसे शक्ति-संपन्न राजा भी उसकी अधीनता स्वीकार कर चुके हैं और उसकी छत्रछाया में रहना पसंद करते हैं। अतः जरासंध के रहते हुए और कौन सम्राट-पद प्राप्त कर सकता है? जब महाराज उग्रसेन का नासमझ बेटा कंस जरासंध की बेटी से ब्याह करके उसका साथी बन गया था, तब मैंने और मेरे बंधुओं ने जरासंध के विरुद्ध युद्ध किया था। तीन बरस तक हम उसकी सेनाओं के साथ लड़ते रहे, पर आखिर हार गए। हमें मथुरा छोड़कर दूर पश्चिम द्वारका में जाकर नगर और दुर्ग बनाकर रहना पड़ा। आपके साम्राज्याधीश होने में दुर्योधन और कर्ण को आपत्ति न भी हो, फिर भी जरासंध से इसकी आशा रखना बेकार है। बगैर युद्ध के जरासंध इस बात को नहीं मान सकता है। जरासंध ने आज तक पराजय का नाम तक नहीं जाना है। ऐसे अजेय पराक्रमी राजा जरासंध के जीते जी आप राजसूय यज्ञ नहीं कर सकेंगे। उसने जो राजे-महाराजे बंदीगृह में डाल रखे हैं, किसी-न-किसी उपाय से पहले उन्हें छुड़ाना होगा। जब ये हो जाएगा, तभी राजसूय करना आपके लिए साध्य होगा।"

श्रीकृष्ण की ये बातें सुनकर शांति-प्रिय राजा युधिष्ठिर बोले—"आपका कहना बिलकुल सही है। इस विशाल संसार में कितने ही राजाओं के लिए जगह है। कितने ही नरेश अपने-अपने राज्य का शासन करते हुए इसमें संतुष्ट रह सकते हैं। आकांक्षा वह आग है, जो कभी बुझती नहीं है। इसलिए मेरी भलाई इसी में दिखती है कि साम्राज्याधीश बनने का विचार छोड़ दूँ और जो है उसी को लेकर संतुष्ट रहूँ।"

युधिष्ठिर की यह विनयशीलता भीमसेन को अच्छी न लगी। उसने कहा—"श्रीकृष्ण की नीति-कुशलता, मेरा शारीरिक बल और अर्जुन का शौर्य एक साथ मिल जाने पर कौन सा ऐसा काम है, जो हम नहीं कर सकते? यदि हम तीनों एक साथ चल पड़ें, तो जरासंध की शक्ति को चूर करके ही लौटेंगे। आप इस बात की शंका न करें।"

यह सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा—"यदि भीम और अर्जुन सहमत हों, तो हम तीनों एक साथ जाकर उस अन्यायी की जेल में पड़े हुए निर्दोष राजाओं को छुड़ा सकेंगे।"

परंतु युधिष्ठिर को यह बात न जँची। उन्होंने कहा—"मैं तो कहूँगा कि जिस कार्य में प्राणों पर बन आने की संभावना हो, उसके विचार तक को छोड़ देना ही अच्छा होगा।"

यह सुनकर वीर अर्जुन बोल उठा—"यदि हम यशस्वी भरतवंश की संतान होकर भी कोई साहस का काम न करें, तो धिक्कार है हमें और हमारे जीवन को! जिस काम को करने की हममें सामर्थ्य है, भाई युधिष्ठिर क्यों समझते हैं कि उसे हम न कर सकेंगे?"

श्रीकृष्ण अर्जुन की इन बातों से मुग्ध हो गए। बोले—"धन्य हो अर्जुन! कुंती के लाल अर्जुन से मुझे यही आशा थी।"

जब जरासंध के साथ युद्ध करने का निश्चय हो गया, तो श्रीकृष्ण और पांडवों ने अपनी योजना बनाई। श्रीकृष्ण, भीमसेन और अर्जुन ने वल्कल पहन लिए, हाथ में कुशा ले ली और व्रती लोगों का-सा वेष धारण करके मगध देश के लिए रवाना हो गए। राह में सुंदर नगरों तथा गाँवों को पार करते हुए वे तीनों जरासंध की राजधानी में पहुँचे। जरासंध ने कुलीन अतिथि

समझकर उनका बड़े आदर के साथ स्वागत किया। जरासंध के स्वागत का भीम और अर्जुन ने कोई जवाब नहीं दिया। वे दोनों मौन रहे। इस पर श्रीकृष्ण बोले–"मेरे दोनों साथियों ने मौन व्रत लिया हुआ है, इस कारण अभी नहीं बोलेंगे। आधी रात के बाद व्रत खुलने पर बातचीत करेंगे।" जरासंध ने इस बात पर विश्वास कर लिया और तीनों मेहमानों को यज्ञशाला में ठहराकर महल में चला गया। कोई भी ब्राह्मण अतिथि जरासंध के यहाँ आता, तो उनकी इच्छा तथा सुविधा के अनुसार बातें करना व उनका सत्कार करना जरासंध का नियम था। इसके अनुसार आधी रात के बाद जरासंध अतिथियों से मिलने गया, लेकिन अतिथियों के रंग-ढंग देखकर मगध-नरेश के मन में कुछ शंका हुई।

राजा जरासंध ने कड़ककर पूछा–"सच-सच बताओ, तुम लोग कौन हो? ब्राह्मण तो नहीं दिखाई देते।" इस पर तीनों ने सही हाल बता दिया और कहा–"हम तुम्हारे शत्रु हैं। तुमसे अभी द्वंद्व युद्ध करना चाहते हैं। हम तीनों में से किसी एक से, जिससे तुम्हारी इच्छा हो, लड़ सकते हो। हम सभी इसके लिए तैयार हैं।"

तभी भीमसेन और जरासंध में कुश्ती शुरू हो गई। दोनों वीर एक-दूसरे को पकड़ते, मारते और उठाते हुए लड़ने लगे। इस प्रकार पलभर भी विश्राम किए बगैर वे तेरह दिन और तेरह रात लगातार लड़ते रहे। चौदहवें दिन जरासंध थककर ज़रा देर को रुक गया। पर ठीक मौका देखकर श्रीकृष्ण ने भीम को इशारे से समझाया और भीमसेन ने फ़ौरन जरासंध को उठाकर चारों ओर घुमाया और उसे ज़मीन पर ज़ोर से पटक दिया। इस प्रकार अजेय जरासंध का अंत हो गया।

श्रीकृष्ण और दोनों पांडवों ने उन सब राजाओं को छुड़ा लिया, जिनको जरासंध ने बंदीगृह में डाल रखा था और जरासंध के पुत्र सहदेव को मगध की राजगद्दी पर बैठाकर इंद्रप्रस्थ लौट आए। इसके बाद पांडवों ने विजय-यात्रा की और सारे देश को महाराज युधिष्ठिर की अधीनता में ले आए।

जरासंध के वध के बाद पांडवों ने राजसूय यज्ञ किया। इसमें समस्त भारत के राजा आए हुए थे। जब अभ्यागत नरेशों का आदर-सत्कार करने की बारी आई, तो प्रश्न उठा कि अग्र-पूजा किसकी हो? सम्राट युधिष्ठिर ने इस बारे में पितामह भीष्म से सलाह ली। वृद्ध भीष्म ने कहा कि द्वारकाधीश श्रीकृष्ण की पूजा पहले की जाए। युधिष्ठिर को भी यह बात पसंद आई। उन्होंने सहदेव को आज्ञा दी कि वह श्रीकृष्ण का पूजन करे। सहदेव ने विधिवत् श्रीकृष्ण की पूजा की। वासुदेव का इस प्रकार गौरवान्वित होना चेदि-नरेश शिशुपाल को अच्छा नहीं लगा। वह एकाएक उठ खड़ा हुआ और ठहाका मारकर हँस पड़ा। सारी सभा की दृष्टि जब शिशुपाल की ओर गई, तो वह ऊँचे स्वर में व्यंग्य से बोलने लगा–"यह अन्याय की बात है कि एक मामूली से व्यक्ति को इस प्रकार गौरवान्वित किया जाता है।"

युधिष्ठिर को यों आड़े हाथों लेने के बाद शिशुपाल सभा में उपस्थित राजाओं की ओर देखकर बोला–"उपस्थित राजागण! जिस दुरात्मा ने कुचक्र रचकर वीर जरासंध को मरवा डाला, उसी की युधिष्ठिर ने अग्र-पूजा की। इसके बाद उसे हम धर्मात्मा कैसे कह सकते हैं? उनमें हमारा विश्वास नहीं रहा है।"

इस तरह शब्द-बाणों की बौछार कर चुकने के बाद शिशुपाल दूसरे कुछ राजाओं

को साथ लेकर सभा से निकल गया। राजाधिराज युधिष्ठिर नाराज़ हुए राजाओं के पीछे दौड़े गए और अनुनय-विनय करके उन्हें समझाने लगे। युधिष्ठिर के बहुत समझाने पर भी शिशुपाल नहीं माना। उसका हठ और घमंड बढ़ता गया। अंत में शिशुपाल और श्रीकृष्ण में युद्ध छिड़ गया, जिसमें शिशुपाल मारा गया। राजसूय यज्ञ संपूर्ण हुआ और राजा युधिष्ठिर को राजाधिराज की पदवी प्राप्त हो गई।

0751CH15

15 शकुनि का प्रवेश

एक दिन युधिष्ठिर ने अपने भाइयों से कहा– "भाइयो! युद्ध की संभावना ही मिटा देने के उद्देश्य से मैं यह शपथ लेता हूँ कि आज से तेरह बरस तक मैं अपने भाइयों या किसी और बंधु को बुरा-भला नहीं कहूँगा। सदा अपने भाई-बंधुओं की इच्छा पर ही चलूँगा। मैं ऐसा कुछ नहीं करूँगा, जिससे आपस में मनमुटाव होने का डर हो, क्योंकि मनमुटाव के कारण ही झगड़े होते हैं। इसलिए मन से क्रोध को एकबारगी निकाल दूँगा। दुर्योधन और दूसरे कौरवों की बात कभी न टालूँगा। हमेशा उनकी इच्छानुसार काम करूँगा।"

युधिष्ठिर की बातें उनके भाइयों को भी ठीक लगीं। वे भी इसी निश्चय पर पहुँचे कि झगड़े-फसाद का हमें कारण नहीं बनना चाहिए। उधर युधिष्ठिर चिंतित हो रहे थे कि कहीं कोई लड़ाई-झगड़ा न हो जाए और इधर राजसूय यज्ञ का ठाट-बाट तथा पांडवों की यश-समृद्धि का स्मरण ही दुर्योधन के मन को खाए जा रहा था। वह ईर्ष्या की जलन से बेचैन हो रहा था। दुर्योधन ने यह भी देखा कि कितने ही देशों के राजा पांडवों के परम मित्र बने हैं। इस सबके स्मरण मात्र से उसका दुख और भी असह्य हो उठा। पांडवों के सौभाग्य की याद करके उसकी जलन बढ़ने लगती थी। अपने महल के कोने में इसी भाँति चिंतित और उदास भाव से वह एक रोज़ खड़ा हुआ था कि उसे यह भी पता न लगा कि उसकी बगल में उसका मामा शकुनि आ खड़ा हुआ है।

"बेटा! यों चिंतित और उदास क्यों खड़े हो? कौन सा दुख तुमको सता रहा है?" शकुनि ने पूछा। दुर्योधन लंबी साँस लेते हुए बोला–"मामा, चारों भाइयों समेत युधिष्ठिर ठाट-बाट से राज कर रहा है। यह सब इन आँखों से देखने पर भी मैं कैसे शोक न करूँ? मेरा तो अब जीना ही व्यर्थ मालूम होता है!"

शकुनि दुर्योधन को सांत्वना देता हुआ बोला–"बेटा दुर्योधन! इस तरह मन छोटा क्यों करते हो? आखिर पांडव तुम्हारे भाई ही तो हैं। उनके सौभाग्य पर तुम्हें जलन नहीं होनी चाहिए। न्यायपूर्वक जो राज्य उनको प्राप्त हुआ है, उसी का तो उपभोग वे कर रहे हैं। पांडवों ने किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं है। जिस पर उनका अधिकार था, वही उन्हें मिला है। अपनी शक्ति

से प्रयत्न करके यदि उन्होंने अपना राज्य तथा सत्ता बढ़ा ली है, तो तुम जी छोटा क्यों करते हो? और फिर पांडवों की शक्ति और सौभाग्य से तुम्हारा बिगड़ता क्या है? तुम्हें कमी किस बात की है? द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा तथा कर्ण जैसे महावीर तुम्हारे पक्ष में हैं। यही नहीं, बल्कि मैं, भीष्म, कृपाचार्य, जयद्रथ, सोमदत्त सब तुम्हारे साथ हैं। इन साथियों की सहायता से तुम सारे संसार पर विजय पा सकते हो। फिर दुख क्यों करते हो?"

यह सुनकर दुर्योधन बोला–"जब ऐसी बात है, तो मामा जी, हम इंद्रप्रस्थ पर चढ़ाई ही क्यों न कर दें?"

शकुनि ने कहा–"युद्ध की तो बात ही न करो। वह खतरनाक काम है। तुम पांडवों पर विजय पाना चाहते हो, तो युद्ध के बजाए चतुराई से काम लो। मैं तुमको ऐसा उपाय बता सकता हूँ, जिससे बगैर लड़ाई के ही युधिष्ठिर पर सहज में विजय पाई जा सके।"

दुर्योधन की आँखें आशा से चमक उठीं। बड़ी उत्सुकता के साथ पूछा, "मामा जी! आप ऐसा उपाय जानते हैं?"

शकुनि ने कहा–"दुर्योधन, युधिष्ठिर को चौसर के खेल का बड़ा शौक है। पर उसे खेलना नहीं आता है। हम उसे खेलने के लिए न्यौता दें, तो युधिष्ठिर अवश्य मान जाएगा। तुम तो जानते ही हो कि मैं मँजा हुआ खिलाड़ी हूँ। तुम्हारी ओर से मैं खेलूँगा और युधिष्ठिर को हराकर उसका सारा राज्य और ऐश्वर्य, बिना युद्ध के आसानी से छीनकर तुम्हारे हवाले कर दूँगा।"

इसके बाद दुर्योधन और शकुनि धृतराष्ट्र के पास गए। शकुनि ने बात छेड़ी–"राजन्! देखिए तो आपका बेटा दुर्योधन शोक और चिंता के कारण पीला-सा पड़ गया है।"

अंधे और बूढ़े धृतराष्ट्र को अपने बेटे पर अपार स्नेह था। शकुनि की बातों से वह सचमुच बड़े चिंतित हो गए। अपने बेटे को उन्होंने छाती से लगा लिया और बोले–"बेटा! मुझे तो कुछ समझ में ही नहीं आता कि तुम्हें किस बात का दुख हो सकता है। तुम्हारे पास ऐश्वर्य की कमी नहीं है। सारा संसार तुम्हारी आज्ञा पर चल रहा है। फिर तुम्हें चिंता काहे की?"

लेकिन शकुनि ने धृतराष्ट्र को सलाह दी कि चौसर के खेल के लिए पांडवों को बुलाया जाए।

दोनों के इस प्रकार आग्रह करने पर भी धृतराष्ट्र ने तुरंत हाँ नहीं की। वह बोले–"मुझे यह उपाय ठीक नहीं जँच रहा है। मैं विदुर से भी तो सलाह कर लूँ। वह बड़ा समझदार है। मैं हमेशा से उसका कहा मानता आया हूँ। उससे सलाह कर लेने के बाद ही कुछ तय करना ठीक होगा।" पर दुर्योधन को विदुर से सलाह करने की बात पसंद नहीं आई।

धृतराष्ट्र बोले–"जुए का खेल वैर-विरोध की जड़ होता है। इसलिए बेटा, मेरी तो यह राय है कि तुम्हारा यह विचार ठीक नहीं है। इसे छोड़ दो।"

दुर्योधन अपने हठ पर दृढ़ रहता हुआ बोला–"चौसर का खेल कोई हमने तो ईजाद किया नहीं है। यह तो हमारे पूर्वजों का ही चलाया हुआ है।" दुर्योधन के इस तरह आग्रह करने पर आखिर धृतराष्ट्र ने घुटने टेक दिए। बेटे का आग्रह मानकर धृतराष्ट्र ने चौसर खेलने के लिए अनुमति दे दी और सभा-मंडप बनाने की भी आज्ञा दे दी, परंतु विदुर से भी उन्होंने इस बारे में गुपचुप सलाह की।

विदुर बोले—"राजन्, सारे वंश का इससे नाश हो जाएगा। इसके कारण हमारे कुल के लोगों में आपसी मनमुटाव और झगड़े-फसाद होंगे। इसकी भारी विपदा हम पर आएगी।"

धृतराष्ट्र ने कहा—"भाई विदुर! मुझे खेल का भय नहीं है। लेकिन हम क्या कर सकते हैं? सो तुम ही युधिष्ठिर के पास जाओ और उसे मेरी तरफ़ से खेल के लिए न्यौता देकर बुला लाओ।"

अपने बेटे पर उनका असीम स्नेह उनकी कमज़ोरी थी और यही कारण था कि उन्होंने बेटे की बात मान ली।

0751CH16

16 चौसर का खेल व द्रौपदी की व्यथा

धृतराष्ट्र की बात मानकर विदुर पांडवों के पास आए। उनको देखकर महाराज युधिष्ठिर उठे और उनका यथोचित स्वागत-सत्कार किया। विदुर आसन पर बैठते हुए शांति से बोले—"हस्तिनापुर में खेल के लिए एक सभा-मंडप बनाया गया है, जो तुम्हारे मंडप के समान ही सुंदर है। राजा धृतराष्ट्र की ओर से उसे देखने चलने के लिए मैं तुम लोगों को न्यौता देने आया हूँ। राजा धृतराष्ट्र की इच्छा है कि तुम सब भाइयों सहित वहाँ आओ, उस मंडप को देखो और दो हाथ चौसर भी खेल जाओ।"

युधिष्ठिर ने कहा—"चाचा जी! चौसर का खेल अच्छा नहीं है। उससे आपस में झगड़े पैदा होते हैं। समझदार लोग उसे पसंद नहीं करते हैं। लेकिन इस मामले में हम तो आप ही के आदेशानुसार चलनेवाले हैं। आपकी सलाह क्या है?"

विदुर बोले—"यह तो किसी से छिपा नहीं है कि चौसर का खेल सारे अनर्थ की जड़ होता है। मैंने तो भरसक कोशिश की थी कि इसे न होने दूँ, किंतु राजा ने आज्ञा दी है कि तुम्हें खेल के लिए न्यौता दे ही आऊँ। इसलिए आना पड़ा। अब तुम्हारी जो इच्छा हो करो।"

राजवंशों की रीति के अनुसार किसी को भी खेल के लिए बुलावा मिल जाने पर उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता था। इसके अलावा युधिष्ठिर को डर था कि कहीं खेल में न जाने को ही धृतराष्ट्र अपना अपमान न समझ लें और यही बात कहीं लड़ाई का कारण न बन जाए। इन्हीं सब विचारों से प्रेरित होकर समझदार युधिष्ठिर ने न्यौता स्वीकार कर लिया, यद्यपि विदुर ने उन्हें चेता दिया था। युधिष्ठिर अपने परिवार के साथ हस्तिनापुर पहुँच गए। नगर के पास ही उनके लिए एक सुंदर विश्राम-गृह बना था। वहाँ ठहरकर उन्होंने आराम किया। अगले दिन सुबह नहा-धोकर सभा-मंडप में जा पहुँचे।

कुशल समाचार पूछने के बाद शकुनि ने कहा—"युधिष्ठिर, खेल के लिए चौपड़ बिछा हुआ है। चलिए, दो हाथ खेल लें।"

युधिष्ठिर बोले–"राजन्, यह खेल ठीक नहीं है! बाज़ी जीत लेना साहस का काम नहीं है। जुआ खेलना धोखा देने के समान है। आप तो यह सब बातें जानते ही हैं।"

वह बोला–"आप भी क्या कहते हैं, महाराज! यह भी कोई धोखे की बात है! हाँ, यह कहिए कि आपको हार जाने का डर लग रहा है।"

युधिष्ठिर कुछ गरम होकर बोले–"राजन्! ऐसी बात नहीं है। अगर मुझे खेलने को कहा गया, तो मैं ना नहीं करूँगा। आप कहते हैं, तो मैं तैयार हूँ। मेरे साथ खेलेगा कौन?"

दुर्योधन तुरंत बोल उठा–"मेरी जगह खेलेंगे तो मामा शकुनि किंतु दाँव लगाने के लिए जो धन-रत्नादि चाहिए, वह मैं दूँगा।"

युधिष्ठिर बोले–"मेरी राय यह है कि किसी एक की जगह दूसरे को नहीं खेलना चाहिए। यह खेल के साधारण नियमों के विरुद्ध है।"

"अच्छा तो अब दूसरा बहाना बना लिया।" शकुनि ने हँसते हुए कहा।

युधिष्ठिर ने कहा–"ठीक है। कोई बात नहीं, मैं खेलूँगा।" और खेल शुरू हुआ। सारा मंडप दर्शकों से खचाखच भरा हुआ था। द्रोण, भीष्म, कृप, विदुर, धृतराष्ट्र जैसे वयोवृद्ध भी उपस्थित थे। वे उसे रोक नहीं सके थे। उनके चेहरों पर उदासी छाई हुई थी। अन्य कौरव राजकुमार बड़े चाव से खेल को देख रहे थे।

पहले रत्नों की बाज़ी लगी, फिर सोने-चाँदी के खज़ानों की। उसके बाद रथों और घोड़ों की। तीनों दाँव युधिष्ठिर हार गए। शकुनि का पासा मानो उसके इशारों पर चलता था। खेल में युधिष्ठिर बारी-बारी से अपनी गाएँ, भेड़, बकरियाँ, दास-दासी, रथ, घोड़े, सेना, देश, देश की प्रजा

सब खो बैठे। भाइयों के शरीरों पर जो आभूषण और वस्त्र थे, उनको भी बाज़ी पर लगा दिया और हार गए।

"और कुछ बाकी है?" शकुनि ने पूछा।

"यह साँवले रंग का सुंदर युवक, मेरा भाई नकुल खड़ा है। वह भी मेरा ही धन है। इसकी बाज़ी लगाता हूँ। चलो!" युधिष्ठिर ने जोश के साथ कहा।

शकुनि ने कहा—"अच्छा तो यह बात है! तो यह लीजिए। आपका प्यारा राजकुमार अब हमारा हो गया!" कहते-कहते शकुनि ने पासा फेंका और बाज़ी मार ली।

युधिष्ठिर ने कहा—"यह मेरा भाई सहदेव, जिसने सारी विद्याओं का पार पा लिया है। इसकी बाज़ी लगाना उचित तो नहीं है, फिर भी लगाता हूँ। चलो, देखा जाएगा।"

"यह चला और वह जीता," कहते हुए शकुनि ने पासा फेंका। सहदेव को भी युधिष्ठिर गँवा बैठे।

अब दुरात्मा शकुनि को आशंका हुई कि कहीं युधिष्ठिर खेल बंद न कर दें। बोला—"युधिष्ठिर, शायद आपकी निगाह में भीमसेन और अर्जुन माद्री के बेटों से ज़्यादा मूल्यवान हैं। सो उनको बाज़ी पर आप लगाएँगे नहीं।"

युधिष्ठिर ने कहा—"मूर्ख शकुनि! तुम्हारी चाल यह मालूम होती है कि हम भाइयों में आपस में फूट पड़ जाए! सो तुम क्या जानो कि हम पाँचों भाइयों के संबंध क्या हैं? पराक्रम में जिसका कोई सानी नहीं है, उस अपने भाई अर्जुन को मैं दाँव पर लगाता हूँ। चलो।"

शकुनि यही तो चाहता था। "तो यह चला", कहते हुए पासा फेंका और अर्जुन भी हाथ से निकल गया। असीम दुर्दैव मानो युधिष्ठिर को बेबस कर रहा था और उन्हें पतन की ओर बलपूर्वक लिए जा रहा था। वह बोले—"राजन्! शारीरिक बल में संसारभर में जिसका कोई जोड़ीदार नहीं है, अपने उस भाई को मैं दाँव पर लगाता हूँ।" यह कहते-कहते युधिष्ठिर भीमसेन से भी हाथ धो बैठे।

दुष्टात्मा शकुनि ने तब भी नहीं छोड़ा। पूछा—"और कुछ?"

युधिष्ठिर ने कहा—"हाँ! यदि इस बार तुम जीत गए, तो मैं खुद तुम्हारे अधीन हो जाऊँगा।"

"लो, यह जीता!" कहते हुए शकुनि ने पासा फेंका और यह बाज़ी भी ले गया।

इस पर शकुनि सभा के बीच उठ खड़ा हुआ और पाँचों पांडवों को एक-एक करके पुकारा और घोषणा की कि वे अब उसके गुलाम हो चुके हैं। शकुनि को दाद देनेवालों के हर्षनाद से और पांडवों की इस दुर्दशा पर तरस खानेवालों के हाहाकार से सारा सभा-मंडप गूँज उठा। सभा में इस तरह खलबली मचने के बाद शकुनि ने युधिष्ठिर से कहा—"एक और चीज़ है, जो तुमने अभी हारी नहीं है। उसकी बाज़ी लगाओ, तो तुम अपने-आपको भी छुड़ा सकते हो। अपनी पत्नी द्रौपदी को तुम दाँव पर क्यों नहीं लगाते?" और जुए के नशे में चूर युधिष्ठिर के मुँह से निकल पड़ा—"चलो अपनी पत्नी द्रौपदी की भी मैंने बाज़ी लगाई!" उनके मुँह से यह निकल तो गया, पर उसके परिणाम को सोचकर वह विकल हो उठे कि 'हाय यह मैंने क्या कर डाला!'

युधिष्ठिर की इस बात पर सारी सभा में एकदम हाहाकार मच गया। जहाँ वृद्ध लोग बैठे थे, उधर से धिक्कार की आवाज़ें आने लगीं।

लोग बोले–"छिः–छिः, कैसा घोर पाप है!" कुछ ने आँसू बहाए और कुछ लोग परेशानी के मारे पसीने से तर–ब–तर हो गए। दुर्योधन और उसके भाइयों ने बड़ा शोर मचाया। पर युयुत्सु नाम का धृतराष्ट्र का एक बेटा शोक संतप्त हो उठा और ठंडी आह भरकर उसने सिर झुका लिया।

शकुनि ने पासा फेंककर कहा–"यह लो, यह बाज़ी भी मेरी ही रही।"

बस, फिर क्या था? दुर्योधन ने विदुर को आदेश देते हुए कहा–"आप अभी रनवास में जाएँ और द्रौपदी को यहाँ ले आएँ। उससे कहें कि जल्दी आए।"

विदुर बोले–"मूर्ख! नाहक क्यों मृत्यु को न्यौता देने चला है। अपनी विषम परिस्थिति का तुम्हें ज्ञान नहीं है।"

दुर्योधन को यों फटकारने के बाद विदुर ने सभासदों की ओर देखकर कहा–"अपने को हार चुकने के बाद युधिष्ठिर को कोई अधिकार नहीं था कि वह पांचालराज की बेटी को दाँव पर लगाए।"

विदुर की बातों से दुर्योधन बौखला उठा। अपने सारथी प्रातिकामी को बुलाकर कहा–"विदुर तो हमसे जलते हैं और पांडवों से डरते हैं। रनवास में जाओ और द्रौपदी को बुला लाओ।"

आज्ञा पाकर प्रातिकामी रनवास में गया और द्रौपदी से बोला–"द्रुपदराज की पुत्री! चौसर के खेल में युधिष्ठिर आपको दाँव में हार बैठे हैं। आप अब राजा दुर्योधन के अधीन हो गई हैं। राजा की आज्ञा है कि अब आपको धृतराष्ट्र के महल में दासी का काम करना है। मैं आपको ले जाने के लिए आया हूँ।"

सारथी ने जुए के खेल में जो कुछ हुआ था, उसका सारा हाल कह सुनाया।

वह प्रातिकामी से बोली–"रथवान! जाकर उन हारनेवाले जुए के खिलाड़ी से पूछो कि पहले वह अपने को हारे थे या मुझे? सारी सभा में यह प्रश्न उनसे करना और जो उत्तर मिले, वह मुझे आकर बताओ। उसके बाद मुझे ले जाना।"

प्रातिकामी ने जाकर भरी सभा के सामने युधिष्ठिर से वही प्रश्न किया, जो द्रौपदी ने उसे बताया था। इस पर दुर्योधन ने प्रातिकामी से कहा–"द्रौपदी से जाकर कह दो कि वह स्वयं ही आकर अपने पति से यह प्रश्न कर ले।"

प्रातिकामी दोबारा रनवास में गया और द्रौपदी के आगे झुककर बड़ी नम्रता से बोला–"देवि! दुर्योधन की आज्ञा है कि आप सभा में आकर स्वयं ही युधिष्ठिर से प्रश्न कर लें।"

द्रौपदी ने कहा–"नहीं, मैं वहाँ नहीं जाऊँगी। अगर युधिष्ठिर जवाब नहीं देते, तो सभा में जो सज्जन विद्यमान हैं, उन सबको तुम मेरा प्रश्न जाकर सुनाओ और उसका उत्तर आकर मुझे बताओ।"

प्रातिकामी लौटकर फिर सभा में गया और सभासदों को द्रौपदी का प्रश्न सुनाया। यह सुनकर दुर्योधन झल्ला उठा। अपने भाई दुःशासन से बोला–"दुःशासन, यह सारथी भीमसेन से डरता मालूम होता है। तुम्हीं जाकर उस घमंडी औरत को ले आओ।"

दुरात्मा दुःशासन के लिए इससे अच्छी बात और क्या हो सकती थी। उसने द्रौपदी के गुँथे हुए बाल बिखेर डाले, गहने तोड़–फोड़ दिए और उसके बाल पकड़कर बलपूर्वक घसीटता हुआ सभा की ओर ले जाने लगा। द्रौपदी विकल हो उठी। द्रौपदी की ऐसी दीन अवस्था देखकर धृतराष्ट्र के एक बेटे विकर्ण को बड़ा दुख हुआ।

उससे नहीं रहा गया। वह बोला—"उपस्थित वीरो! सुनिए, चौसर के खेल के लिए युधिष्ठिर को धोखे से बुलावा दिया गया था। वह धोखा खाकर इस जाल में फँस गए और अपनी स्त्री तक की बाज़ी लगा दी। यह सारा कार्य न्यायोचित नहीं है। दूसरी बात यह है कि द्रौपदी अकेले युधिष्ठिर की ही पत्नी नहीं है, बल्कि पाँचों पांडवों की पत्नी है। इसलिए उसको दाँव पर लगाने का अकेले युधिष्ठिर को कोई हक नहीं था। इसके अलावा खास बात यह है कि एक बार जब युधिष्ठिर खुद को ही दाँव में हार गए थे, तो उनको द्रौपदी की बाज़ी लगाने का अधिकार ही क्या था? मेरी एक और आपत्ति यह है कि शकुनि ने द्रौपदी का नाम लेकर युधिष्ठिर को उसकी बाज़ी लगाने के लिए उकसाया था। लोगों ने चौसर के खेल के जो नियम बना रखें हैं, यह उनके बिलकुल विरुद्ध है। इन सब बातों के आधार पर मैं इस सारे खेल को नियम-विरुद्ध ठहराता हूँ। मेरी राय में द्रौपदी नियमपूर्वक नहीं जीती गई है।"

युवक विकर्ण के भाषण से वहाँ उपस्थित लोगों के विवेक पर से भ्रम का परदा हट गया। सभा में बड़ा कोलाहल मच गया। यह सब देखकर कर्ण उठ खड़ा हुआ और क्रुद्ध होकर बोला—"विकर्ण, अभी तुम बच्चे हो। सभा में इतने बड़े-बूढ़ों के होते हुए, तुम कैसे बोल पड़े! तुम्हें यहाँ बोलने और तर्क-वितर्क करने का कोई अधिकार नहीं हैं।"

यह देखकर दु:शासन द्रौपदी के पास गया और उसका वस्त्र पकड़कर खींचनें लगा। ज्यों-ज्यों वह खींचता गया त्यों-त्यों वस्त्र भी बढ़ता गया। अंत में खींचते-खींचते दु:शासन की दोनों भुजाएँ थक गईं। हाँफता हुआ वह थकान से चूर होकर बैठ गया। सभा के लोगों में कंपकंपी-सी फैल गई और धीमे स्वर में बातें होने लगीं। इतने में भीमसेन उठा। उसके होंठ मारे क्रोध के फड़क रहे थे। ऊँचे स्वर में उसने यह भयानक प्रतिज्ञा की, "उपस्थित सज्जनो! मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि जब तक, भरत-वंश पर बट्टा लगानेवाले इस दुरात्मा दु:शासन की छाती चीर न लूँगा, तब तक इस संसार को छोड़कर नहीं जाऊँगा।" भीमसेन की इस प्रतिज्ञा को सुनकर उपस्थित लोगों के हृदय भय के मारे थर्रा उठे।

इन सब लक्षणों से धृतराष्ट्र ने समझ लिया कि यह सब ठीक नहीं हुआ है। उन्होंने अनुभव किया कि जो कुछ हो चुका है, उसका परिणाम शुभ नहीं होगा। यह उनके पुत्रों और कुल के विनाश का कारण बन जाएगा। उन्होंने परिस्थिति को सँभालने के इरादे से द्रौपदी को बड़े प्रेम से अपने पास बुलाया और शांत किया तथा सांत्वना दी। उसके बाद वह युधिष्ठिर की ओर मुड़कर बोले—"युधिष्ठिर तुम तो अजातशत्रु हो। उदार-हृदय के भी हो। दुर्योधन की इस कुचाल को क्षमा करो और इन बातों को मन से निकाल दो और भूल जाओ। अपना राज्य तथा संपत्ति आदि सब ले जाओ और इंद्रप्रस्थ जाकर सुखपूर्वक रहो!"

धृतराष्ट्र की इन मीठी बातों को सुनकर पांडवों के दिल शांत हो गए और यथोचित अभिवादनादि के उपरांत द्रौपदी और कुंती सहित सब पांडव इंद्रप्रस्थ के लिए विदा हो गए। पांडवों के विदा हो जाने के बाद कौरवों में बड़ी हलचल मच गई। पांडवों के इस प्रकार अपने पंजे से साफ़ निकल जाने के कारण कौरव बड़ा क्रोध-प्रदर्शन करने लगे और दु:शासन तथा शकुनि

के उकसाने पर दुर्योधन पुनः अपने पिता धृतराष्ट्र के सिर पर सवार हो गया और पांडवों को खेल के लिए एक बार और बुलाने को उनको राज़ी कर लिया। युधिष्ठिर को खेल के लिए बुलाने को फिर दूत भेजा गया। पिछली घटना के कारण दुखी होते हुए भी युधिष्ठिर को यह निमंत्रण स्वीकार करना पड़ा। युधिष्ठिर हस्तिनापुर लौटे और शकुनि के साथ फिर चौपड़ खेला। इस बार खेल में यह शर्त थी कि हारा हुआ दल अपने भाइयों के साथ बारह वर्ष तक वनवास करेगा तथा उसके उपरांत एक वर्ष अज्ञातवास में रहेगा। यदि इस एक वर्ष में उनका पता चल जाएगा, तो उन सबको बारह वर्ष का वनवास फिर से भोगना होगा। इस बार भी युधिष्ठिर हार गए और पांडव अपने किए वादे के अनुसार वन में चले गए।

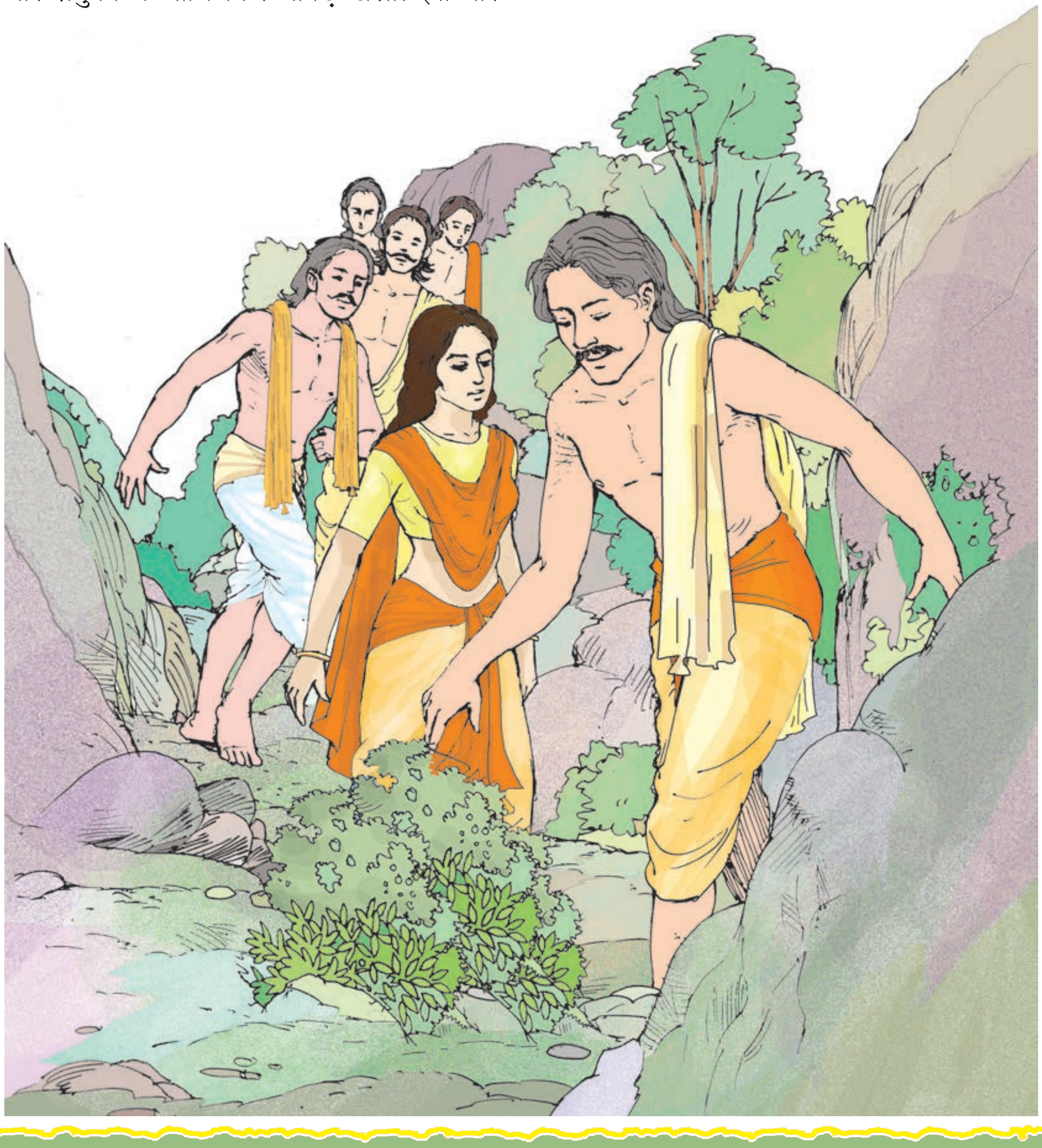

0751CH17

17 धृतराष्ट्र की चिंता

जब द्रौपदी को साथ लेकर पांडव वन की ओर जाने लगे थे, तो धृतराष्ट्र ने विदुर को बुला भेजा और पूछा–"विदुर, पांडु के बेटे और द्रौपदी कैसे जा रहे हैं? मैं कुछ देख नहीं सकता हूँ। तुम्हीं बताओ, कैसे जा रहे हैं वे?"

विदुर ने कहा–"कुंती-पुत्र युधिष्ठिर, कपड़े से चेहरा ढककर जा रहे हैं। भीमसेन अपनी दोनों भुजाओं को निहारता, अर्जुन हाथ में कुछ बालू लिए उसे बिखेरता, नकुल और सहदेव सारे शरीर पर धूल रमाए हुए, क्रमशः युधिष्ठिर के पीछे-पीछे जा रहे हैं। द्रौपदी ने बिखरे हुए केशों से सारा मुख ढक लिया है और आँसू बहाती हुई, युधिष्ठिर का अनुसरण कर रही है।"

यह सुनकर धृतराष्ट्र की आशंका और चिंता पहले से भी अधिक प्रबल हो उठी।

विदुर बार-बार धृतराष्ट्र से आग्रह करते थे कि आप पांडवों के साथ संधि कर लें। विदुर अकसर इसी भाँति धृतराष्ट्र को उपदेश दिया करते थे। विदुर की बुद्धिमता का धृतराष्ट्र पर भारी प्रभाव था। इसलिए शुरू-शुरू में वह विदुर की बातें सुन लिया करते थे। परंतु बार-बार विदुर की ऐसी ही बातें सुनते-सुनते वह ऊब गए।

एक दिन विदुर ने फिर वही बात छेड़ी, तो धृतराष्ट्र झुँझलाकर बोले–"विदुर! मुझे अब तुम्हारी सलाह की ज़रूरत नहीं है। अगर चाहो तो तुम भी पांडवों के पास चले जाओ।"

धृतराष्ट्र यह कहकर बड़े क्रोध के साथ विदुर के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना अंतःपुर में चले गए। विदुर ने मन में कहा कि अब इस वंश का सर्वनाश निश्चित है। उन्होंने तुरंत अपना रथ जुतवाया और उस पर चढ़कर जंगल में उस ओर तेज़ी से चल पड़े, जहाँ पांडव अपने वनवास का काल व्यतीत कर रहे थे। विदुर के चले जाने पर धृतराष्ट्र और भी चिंतित हो गए। वह सोचने लगे कि मैंने यह क्या कर दिया। विदुर को भगाकर मैंने भारी भूल कर दी। यह सोचकर धृतराष्ट्र ने संजय को बुलाया और कहा–"संजय! मैंने अपने प्रिय विदुर को बहुत बुरा-भला कह दिया था, इससे गुस्सा होकर वह वन में चला गया है। तुम जाकर उसे किसी तरह समझा-बुझाकर मेरे पास वापस ले आओ।"

धृतराष्ट्र की बात मानकर संजय जंगल में पांडवों के आश्रम में जा पहुँचे। संजय ने विदुर से बड़ी नम्रता के साथ कहा–"धृतराष्ट्र अपनी भूल पर पछता रहे हैं। आप यदि वापस नहीं लौटेंगे, तो वह अपने प्राण छोड़ देंगे। कृपया अभी लौट चलिए।"

यह बात सुनकर विदुर युधिष्ठिर आदि से विदा लेकर हस्तिनापुर के लिए चल पड़े। हस्तिनापुर पहुँचकर जब धृतराष्ट्र के सामने गए, तो धृतराष्ट्र ने उन्हें बड़े प्रेम से गले लगा लिया और गद्गद स्वर में बोले–"निर्दोष विदुर! मैं उतावली में जो बुरा-भला कह बैठा, उसका बुरा मत मानना और मुझे क्षमा कर देना।"

इसी तरह एक बार महर्षि मैत्रेय धृतराष्ट्र के दरबार में पधारे। राजा ने उनका समुचित

आदर-सत्कार करके प्रसन्न किया। फिर महर्षि से हाथ जोड़कर पूछा—"कुरुजांगल के वन में आपने मेरे प्यारे पुत्र वीर पांडवों को तो देखा होगा! वे कुशल से तो हैं!"

महर्षि मैत्रेय ने कहा—"राजन्, काम्यक वन में संयोग से युधिष्ठिर से मेरी भेंट हो गई थी। वन के दूसरे ऋषि-मुनि भी उनसे मिलने उनके आश्रम में आए थे। हस्तिनापुर में जो कुछ हुआ था, उसका सारा हाल उन्होंने मुझे बताया था। यही कारण हैं कि मैं आपके यहाँ आया हूँ। आपके और भीष्म के रहते ऐसा नहीं होना चाहिए था।"

इस अवसर पर दुर्योधन भी सभा में मौजूद था। मुनि ने उसकी ओर देखकर कहा—"राजकुमार, तुम्हारी भलाई के लिए कहता हूँ, सुनो! पांडवों को धोखा देने का विचार छोड़ दो। उनसे वैर मोल न लो। उनके साथ संधि कर लो। इसी में तुम्हारी भलाई है।"

ऋषि ने यों मीठी बातों से दुर्योधन को समझाया, पर ज़िद्दी व नासमझ दुर्योधन ने उसकी ओर देखा तक नहीं। वह कुछ बोला भी नहीं, बल्कि अपनी जाँघ पर हाथ ठोकता और पैर के अँगूठे से ज़मीन कुरेदता, मुसकराता हुआ खड़ा रहा। दुर्योधन की इस ढिठाई को देखकर महर्षि बड़े क्रोधित हुए। उन्होंने कहा—"दुर्योधन! याद रखो, अपने घमंड का फल तुम अवश्य पाओगे।"

इसी बीच हस्तिनापुर में हुई घटनाओं की खबर श्रीकृष्ण को लगी। उन्हें यह पता चला कि पाँचों पांडव द्रौपदी समेत वन में चले गए हैं। यह खबर पाते ही वह फ़ौरन उस वन को चल पड़े जहाँ पांडव ठहरे हुए थे।

श्रीकृष्ण जब पांडवों से भेंट करने के लिए जाने लगे, तो उनके साथ कैकेय, भोज और वृष्टि जाति के नेता, चेदिराज धृष्टकेतु आदि भी गए। इन लोगों के साथ पांडवों का बड़ा स्नेह-संबंध था और वे उनको बड़ी श्रद्धा से देखते थे। द्रौपदी श्रीकृष्ण से मिली। श्रीकृष्ण को देखते ही उसकी आँखों से अविरल अश्रुधार बह चली। बड़ी मुश्किल से वह बोली—"इस तरह अपमानित होने के बाद मेरा जीना ही बेकार है। मेरा कोई नहीं रहा और आप भी मेरे न रहे!" यह कहते-कहते द्रौपदी की बड़ी-बड़ी आँखों से गरम-गरम आँसुओं की धारा बहने लगी। वह आगे न बोल सकी। करुण स्वर में विलाप करती हुई द्रौपदी को श्रीकृष्ण ने बहुत समझाया और धीरज बँधाया। वह बोले—"बहन द्रौपदी! जिन्होंने तुम्हारा अपमान किया है, उन सबकी लाशें युद्ध के मैदान में खून से लथपथ होकर पड़ेंगी। तुम शोक न करो। मैं वचन देता हूँ कि पांडवों की हर प्रकार से सहायता करूँगा। यह भी निश्चय मानो कि तुम साम्राज्ञी के पद को फिर सुशोभित करोगी।"

धृष्टद्युम्न ने भी बहन को सांत्वना दी और समझाते हुए कहा कि श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा अवश्य पूरी होगी। इसके बाद श्रीकृष्ण पांडवों से विदा हुए। साथ में अर्जुन की पत्नी सुभद्रा और उसके पुत्र अभिमन्यु को भी वे द्वारकापुरी लेते गए। द्रौपदी के पुत्रों को लेकर धृष्टद्युम्न पांचाल देश चला गया।

0751CH18

18 भीम और हनुमान

सुहावना मौसम था। द्रौपदी आश्रम के बाहर खड़ी थी। इतने में एक सुंदर फूल हवा में उड़ता हुआ उसके पास आ गिरा। द्रौपदी ने उसे उठा लिया और भीमसेन के पास जाकर बोली–"क्या तुम जाकर ऐसे ही कुछ और फूल ला सकोगे?" यह कहती हुई द्रौपदी हाथ में फूल लिए युधिष्ठिर के पास दौड़ी गई।

द्रौपदी की इच्छा पूरी करने के लिए भीमसेन उस फूल की तलाश में निकल पड़ा। चलते-चलते वह पहाड़ की घाटी में जा पहुँचा, जहाँ केले के पेड़ों का एक विशाल बगीचा लगा हुआ था। बगीचे के बीच एक बड़ा भारी बंदर रास्ता रोके लेटा हुआ था। बंदर ने भीम की तरफ़ देखकर कहा–"मैं कुछ अस्वस्थ हूँ। इसलिए लेटा हुआ हूँ। ज़रा आँख लगी थी, तो तुमने आकर नींद खराब कर दी। मुझे क्यों जगाया तुमने?"

एक बंदर के इस प्रकार मनुष्य जैसा उपदेश देने पर भीमसेन को बड़ा क्रोध आया और बोला–"जानते हो, मैं कौन हूँ? मैं कुरुवंश का वीर, कुंती का बेटा हूँ। मुझे रोको मत! मेरे रास्ते से हट जाओ और मुझे आगे जाने दो।"

बंदर बोला–"देखो भाई, मैं बूढ़ा हूँ। कठिनाई से उठ-बैठ सकता हूँ। ठीक है, यदि तुम्हें आगे बढ़ना ही है, तो मुझे लाँघकर चले जाओ।" भीमसेन ने कहा–"किसी जानवर को लाँघना अनुचित कहा गया है। इसी से मैं रुक गया, नहीं तो मैं कभी का तुम्हें एक ही छलाँग में लाँघकर चला गया होता।" बंदर ने कहा–"भाई, मुझे ज़रा बताना कि वह हनुमान कौन था, जो समुद्र को लाँघ गया था।"

भीमसेन ज़रा कड़ककर बोला–"क्या कहा? तुम महावीर हनुमान को नहीं जानते? उठकर रास्ता दे दो, नाहक मृत्यु को न्यौता मत दो।"

बंदर बड़े करुण स्वर में बोला–"हे वीर! शांत हो जाओ! इतना क्रोध न करो। यदि मुझे लाँघना तुम्हें अनुचित लगता हो, तो मेरी इस पूँछ को हटाकर एक ओर कर दो और चले जाओ।"

भीमसेन ने बंदर की पूँछ एक हाथ से पकड़ ली, लेकिन आश्चर्य! भीम ने पूँछ पकड़ तो ली; पर वह उससे ज़रा भी नहीं हिली–उठने की तो कौन कहे! उसे बड़ा ताज्जुब होने लगा कि यह बात क्या है? उसने दोनों हाथों से पूँछ पकड़कर खूब ज़ोर लगाया। किंतु पूँछ वैसी-की-वैसी ही धरी रही। भीम बड़ा लज्जित हुआ। उसका गर्व चूर हो गया। उसे बड़ा विस्मय होने लगा कि मुझसे अधिक ताकतवर यह कौन है! भीम के मन में बलिष्ठों के लिए बड़ी श्रद्धा थी। वह नम्र हो गया। बोला–"मुझे क्षमा करें। आप कौन हैं?" हनुमान ने कहा–"हे पांडुवीर! हनुमान मैं ही हूँ।"

"वानर-श्रेष्ठ! मुझसे बढ़कर भाग्यवान और कौन होगा, जो मुझे आपके दर्शन प्राप्त हुए।" कहकर भीमसेन ने हनुमान को दंडवत प्रणाम किया। मारुति ने आशीर्वाद देते हुए कहा–"भीम! युद्ध के समय तुम्हारे भाई अर्जुन के रथ पर उड़नेवाली ध्वजा पर मैं विद्यमान रहूँगा। विजय तुम्हारी ही होगी।" इसके बाद हनुमान ने भीमसेन को पास के झरने में खिले हुए सुगंधित फूल दिखाए। फूलों को देखते ही भीमसेन को द्रौपदी का स्मरण हो आया। उसने जल्दी से फूल तोड़े और वेग से आश्रम की ओर लौट चला।

19 द्वेष करनेवाले का जी नहीं भरता

0751CH19

पांडवों के वनवास के दिनों में कई ब्राह्मण उनके आश्रम गए थे। वहाँ से लौटकर वे हस्तिनापुर पहुँचे और धृतराष्ट्र को पांडवों के हाल-चाल सुनाए। धृतराष्ट्र ने जब यह सुना कि पांडव वन में बड़ी तकलीफ़ें उठा रहे हैं, तो उनके मन में चिंता होने लगी। लेकिन दुर्योधन और शकुनि कुछ और ही सोचते थे।

कर्ण और शकुनि दुर्योधन की चापलूसी किया करते थे, किंतु दुर्योधन को भला इतने से संतोष कहाँ होता! वह कर्ण से कहता—"कर्ण, मैं तो चाहता हूँ कि पांडवों को मुसीबतों में पड़े हुए अपनी आँखों से देखूँ। इसलिए तुम और मामा शकुनि कुछ ऐसा उपाय करो कि वन में जाकर पांडवों को देखने की पिता जी से अनुमति मिल जाए।"

कर्ण बोला—"द्वैतवन में कुछ बस्तियाँ हैं, जो हमारे अधीन हैं। हर साल उन बस्तियों में जाकर चौपायों की गणना करना राजकुमारों का ही काम होता है। बहुत समय से यह प्रथा चली आ रही है। इसलिए उस बहाने हम पिता जी की अनुमति आसानी से प्राप्त कर सकते हैं।"

कर्ण अपनी बात पूरी तरह से कह भी न पाया था कि दुर्योधन और शकुनि मारे खुशी के उछल पड़े। राजकुमारों ने भी धृतराष्ट्र से आग्रहपूर्वक प्रार्थना की कि वह इसकी अनुमति दे दें। किंतु धृतराष्ट्र न माने।

दुर्योधन ने विश्वास दिलाया कि पांडव जहाँ होंगे, वहाँ वे सब नहीं जाएँगे और बड़ी सावधानी से काम लेंगे। विवश होकर धृतराष्ट्र ने अनुमति दे दी। एक बड़ी सेना को साथ लेकर कौरव द्वैतवन के लिए रवाना हुए। दुर्योधन और कर्ण फूले नहीं समाते थे। उन्होंने पहुँचने पर अपने डेरे ऐसे स्थान पर लगाए, जहाँ से पांडवों का आश्रम चार कोस की दूरी पर ही था।

गंधर्वराज चित्रसेन भी अपने परिवार के साथ उसी जलाशय के तट पर डेरा डाले हुए था। दुर्योधन के अनुचर जलाशय के पास गए और किनारे पर तंबू गाड़ने लगे। इस पर गंधर्वराज के नौकर बहुत बिगड़े और दुर्योधन के अनुचरों की उन्होंने खूब खबर ली। वे कुछ न कर सके और अपने प्राण लेकर भाग खड़े हुए। दुर्योधन को जब इस बात का पता चला, तो उसके क्रोध की सीमा न रही। वह अपनी सेना लेकर तालाब की ओर बढ़ा। वहाँ पहुँचना था कि गंधर्वों और कौरवों की सेनाएँ आपस में भिड़ गईं। घोर संग्राम छिड़ गया। यहाँ तक कि कर्ण जैसे महारथियों के भी रथ और अस्त्र चूर-चूर हो गए और वे उलटे पाँव भाग खड़े हुए। अकेला दुर्योधन लड़ाई के मैदान में अंत तक डटा रहा। गंधर्वराज चित्रसेन ने उसे पकड़ लिया। फिर रस्सी से बाँधकर उसको अपने रथ पर बैठा लिया और शंख बजाकर विजय-घोष किया। जब युधिष्ठिर ने सुना कि दुर्योधन व उसके साथी अपमानित हुए हैं, तो उसने गंभीर स्वर में कहा—"भाई भीमसेन! ये हमारे ही कुटुंबी हैं। तुम अभी जाओ और किसी तरह अपने बंधुओं को गंधर्वों के बंधन से छुड़ा लाओ।"

युधिष्ठिर के आग्रह पर भीम और अर्जुन ने कौरवों की बिखरी हुई सेना को इकट्ठा किया

और वे गंधर्वों पर टूट पड़े। अंततः गंधर्वराज ने कौरवों को बंधनमुक्त कर दिया। इस प्रकार अपमानित कौरव हस्तिनापुर लौट गए।

पांडवों के वनवास के समय दुर्योधन की तो इच्छा राजसूय यज्ञ करने की थी, किंतु पंडितों ने कहा कि धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर के रहते उसे राजसूय यज्ञ करने का अधिकार नहीं है। तब ब्राह्मणों की सलाह मानकर दुर्योधन ने वैष्णव नामक यज्ञ करके ही संतोष कर लिया।

इसी समय की बात है कि महर्षि दुर्वासा अपने दस हज़ार शिष्यों को साथ लेकर दुर्योधन के राजभवन में पधारे। दुर्योधन के सत्कार से ऋषि बहुत प्रसन्न हुए और कहा—"वत्स, कोई वर चाहो, तो माँग लो।"

दुर्योधन बोला—"मुनिवर! प्रार्थना यही है कि जैसे आपने शिष्यों-समेत अतिथि बनकर मुझे अनुगृहीत किया है, वैसे ही वन में मेरे भाई पांडवों के यहाँ जाकर उनका भी सत्कार स्वीकार करें और फिर एक छोटी सी बात मेरे लिए करने की कृपा करें। वह यह कि आप अपने शिष्यों समेत ठीक ऐसे समय युधिष्ठिर के आश्रम में जाएँ, जब द्रौपदी पांडवों एवं उनके परिवार को भोजन करा चुकी हों और जब सभी लोग आराम से बैठे विश्राम कर रहे हों।"

उन्होंने दुर्योधन की प्रार्थना तुरंत मान ली। दुर्वासा ऋषि अपने शिष्यों के साथ युधिष्ठिर के आश्रम में जा पहुँचे। युधिष्ठिर ने भाइयों समेत ऋषि की बड़ी आवभगत की और उनका सत्कार किया। कुछ देर बाद मुनि ने कहा—"अच्छा! हम सब अभी स्नान करके आते हैं। तब तक भोजन तैयार करके रखना।" कहकर दुर्वासा शिष्यों समेत नदी पर स्नान करने चले गए।

वनवास के प्रारंभ में युधिष्ठिर से प्रसन्न होकर सूर्य ने उन्हें एक अक्षयपात्र प्रदान किया था और कहा था कि बारह बरस तक इसके द्वारा मैं तुम्हें भोजन दिया करूँगा। इसकी विशेषता यह है कि द्रौपदी हर रोज़ चाहे जितने लोगों को इस पात्र में से भोजन खिला सकेगी; परंतु सबके भोजन कर लेने पर जब द्रौपदी स्वयं भी भोजन कर चुकेगी, तब इस बरतन की यह शक्ति अगले दिन तक के लिए लुप्त हो जाएगी।

जिस समय दुर्वासा ऋषि आए, उस समय सभी को खिला-पिलाकर द्रौपदी भी भोजन कर चुकी थी। इसीलिए सूर्य का अक्षयपात्र उस दिन के लिए खाली हो चुका था।

द्रौपदी बड़ी चिंतित हो उठी और कोई सहारा न पाकर उसने परमात्मा की शरण ली। इतने में श्रीकृष्ण कहीं से आ गए और सीधे आश्रम के रसोईघर में जाकर द्रौपदी के सामने खड़े हो गए। बोले—"बहन कृष्णा, बड़ी भूख लगी है। कुछ खाने को दो।"

द्रौपदी और भी दुविधा में पड़ गई।

कृष्ण बोले—"ज़रा लाओ तो अपना अक्षयपात्र। देखें कि उसमें कुछ है भी या नहीं।"

द्रौपदी हड़बड़ाकर बरतन ले आई। उसके एक छोर पर अन्न का एक कण और साग की पत्ती लगी हुई थी। श्रीकृष्ण ने उसे लेकर मुँह में डालते हुए मन में कहा—"यह भोजन हो, इससे उनकी भूख मिट जाए।"

द्रौपदी तो यह देखकर सोचने लगी—"कैसी हूँ मैं कि मैंने ठीक से बरतन भी नहीं धोया! इसलिए उसमें लगा हुआ अन्न-कण और साग वासुदेव को खाना पड़ा। धिक्कार है मुझे!" इस

तरह द्रौपदी अपने-आपको ही धिक्कार रही थी कि इतने में श्रीकृष्ण ने बाहर जाकर भीमसेन को कहा–"भीम, जल्दी जाकर ऋषि दुर्वासा को शिष्यों समेत भोजन के लिए बुला लाओ।"

भीमसेन उस स्थान पर गया, जहाँ दुर्वासा ऋषि शिष्यों-समेत स्नान कर रहे थे। नज़दीक जाकर भीमसेन देखता क्या है कि दुर्वासा ऋषि का सारा शिष्य-समुदाय स्नान करके भोजन भी कर चुका है।

शिष्य दुर्वासा से कह रहे थे–"गुरुदेव! युधिष्ठिर से हम व्यर्थ में कह आए कि भोजन तैयार करके रखें। हमारा तो पेट भरा हुआ है। हमसे उठा भी नहीं जाता। इस समय तो हमारी ज़रा भी खाने की इच्छा नहीं है।"

यह सुनकर दुर्वासा ने भीमसेन से कहा–"हम सब तो भोजन कर चुके हैं। युधिष्ठिर से जाकर कहना कि असुविधा के लिए हमें क्षमा करें।" यह कहकर ऋषि अपने शिष्यों सहित वहाँ से रवाना हो गए।

20 मायावी सरोवर

0751CH20

पांडवों के वनवास की अवधि पूरी होने को ही थी। बारह बरस समाप्त होने में कुछ ही दिन रह गए थे। उन्हीं दिनों एक निर्धन ब्राह्मण की सहायता करते हुए पाँचों भाई जंगल में काफ़ी दूर निकल आए। वे थके हुए थे, सो ज़रा सुस्ताने लगे। युधिष्ठिर नकुल से बोले–"भैया! ज़रा उस पेड़ पर चढ़कर देखो तो सही कि कहीं कोई जलाशय या नदी दिखलाई दे रही है?"

नकुल ने पेड़ पर चढ़कर देखा और उतरकर कहा कि कुछ दूरी पर ऐसे पौधे दिखाई दे रहे हैं जो पानी के नज़दीक ही उगते हैं। आसपास कुछ बगुले भी बैठे हुए हैं। वहीं कहीं आसपास पानी अवश्य होना चाहिए। युधिष्ठिर ने कहा कि जाकर देखो और पानी मिले, तो ले आओ। यह सुनकर नकुल तुरंत पानी लाने चल पड़ा। कुछ दूर चलने पर अनुमान के अनुसार नकुल को एक जलाशय मिला। उसने सोचा कि पहले तो मैं अपनी प्यास बुझा लूँ और फिर तरकश में पानी भरकर भाइयों के लिए ले जाऊँगा। यह सोचकर उसने दोनों हाथों की अंजुलि में पानी लिया और पीना ही चाहता था कि इतने में आवाज़ आई–"माद्री के पुत्र! दु:साहस न करो। यह जलाशय मेरे अधीन है। पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो। फिर पानी पियो।"

पर उसे प्यास इतनी तेज़ लगी थी कि उस वाणी की परवाह न करके उसने अंजुलि से पानी पी लिया। पानी पीकर किनारे पर चढ़ते ही उसे कुछ चक्कर-सा आया और वह गिर पड़ा।

बड़ी देर तक नकुल के न लौटने पर युधिष्ठिर चिंतित हो गए और उन्होंने सहदेव को भेजा। सहदेव जलाशय के नज़दीक पहुँचा तो नकुल को ज़मीन पर पड़ा हुआ देखा। पर उसे भी प्यास इतनी तेज़ लगी थी कि वह कुछ ज़्यादा सोच न सका। वह पानी पीने को ही था कि पहले जैसी वाणी उसे भी सुनाई दी। उसने वाणी की चेतावनी पर ध्यान न देते हुए पानी पी लिया

और किनारे पर चढ़ते-चढ़ते वह अचेत होकर नकुल के पास ही गिर पड़ा।

जब सहदेव भी बहुत देर तक नहीं लौटा, तो युधिष्ठिर घबराकर अर्जुन से बोले—"जाकर देखो तो उनके साथ कोई दुर्घटना तो नहीं हो गई?" अर्जुन बड़ी तेज़ी से चला। तालाब के किनारे पर दोनों भाइयों को उसने मृत पड़े हुए देखा, तो वह चौंक उठा। वह नहीं समझ पाया कि इनकी मृत्यु का क्या कारण है! यह सोचते हुए अर्जुन भी पानी पीने के लिए जलाशय में उतरा कि तभी उसे भी वही वाणी सुनाई दी—"अर्जुन! मेरे प्रश्नों का उत्तर देने के बाद ही प्यास बुझा सकते हो। यह तालाब मेरा है। मेरी बात नहीं मानोगे, तो तुम्हारी भी वही गति होगी, जो तुम्हारे दो भाइयों की हुई है।"

अर्जुन यह सुनकर गुस्से से भर गया। उसने बाण छोड़ने शुरू कर दिए। जिधर से आवाज़ सुनाई दी थी, उसी ओर निशाना लगाकर वह तीर चलाता रहा, किंतु उन बाणों का कोई असर नहीं हुआ।

अपने बाणों को बेकार होते देखकर अर्जुन के क्रोध की सीमा न रही। उसने सोचा पहले अपनी प्यास तो बुझा ही लूँ। फिर लड़ लिया जाएगा। यह सोचकर अर्जुन ने जलाशय में उतरकर पानी पी लिया और किनारे आते-आते चारों खाने चित्त होकर गिर पड़ा।

उधर बाट जोहते-जोहते युधिष्ठिर बड़े व्याकुल हो उठे। भीमसेन से चिंतित स्वर में बोले—"भैया भीमसेन! देखो तो अर्जुन भी नहीं लौटा। ज़रा तुम्हीं जाकर तलाश करो कि तीनों भाइयों को क्या हो गया है।"

युधिष्ठिर की आज्ञा मानकर भीमसेन तेज़ी से जलाशय की ओर बढ़ा। तालाब के किनारे पर देखा कि तीनों भाई मरे-से पड़े हुए हैं। सोचा, यह किसी यक्ष की करतूत मालूम होती है। ज़रा पानी पी लूँ फिर देखता हूँ। यह सोचकर भीमसेन तालाब में उतरना ही चाहता था कि फिर वही आवाज़ आई। "मुझे रोकनेवाला तू कौन है?" कहता हुआ भीमसेन बेधड़क तालाब में उतर गया और पानी भी पी लिया। पानी पीते ही अपने भाइयों की तरह वह भी वहीं ढेर हो गया। उधर युधिष्ठिर अकेले बैठे घबराने लगे और सोचने लगे कि बड़े आश्चर्य की बात है कि कोई भी अब तक नहीं लौटा! आखिर भाइयों को हो क्या गया? क्या कारण है कि अभी तक वे लौटे नहीं? जल की खोज में वे जंगल में इधर-उधर भटक तो नहीं गए? मैं ही चलकर देखूँ कि क्या बात है!

0751CH21

21 यक्ष-प्रश्न

युधिष्ठिर उसी विषैले तालाब के पास जा पहुँचे, जिसका जल पीकर उनके चारों भाई मृत-से पड़े हुए थे। यह देखकर युधिष्ठिर चौंक पड़े। असह्य शोक के कारण उनकी आँखों से आँसू बह चले।

कुछ देर यों विलाप करने के बाद युधिष्ठिर ने ज़रा ध्यान से भाइयों के शरीरों को देखा और अपने आपसे कहने लगे—"यह तो कोई मायाजाल-सा लगता है। आसपास ज़मीन पर किसी शत्रु के

पाँव के निशान भी तो नज़र नहीं आ रहे हैं। हो सकता है कि यह भी दुर्योधन का ही कोई षड्यंत्र हो। संभव है पानी में विष मिला हो।"

सोचते-सोचते युधिष्ठिर भी प्यास से प्रेरित होकर तालाब में उतरने लगे। इतने में वही वाणी सुनाई दी। युधिष्ठिर ने ताड़ लिया कि कोई यक्ष बोल रहा है। उन्होंने बात मान ली और बोले–"आप प्रश्न कर सकते हैं।"

यक्ष ने कई प्रश्न किए, जिनके उत्तर युधिष्ठिर ने दिए–

प्र.–मनुष्य का साथ कौन देता है?

उ.–धैर्य ही मनुष्य का साथी होता है।

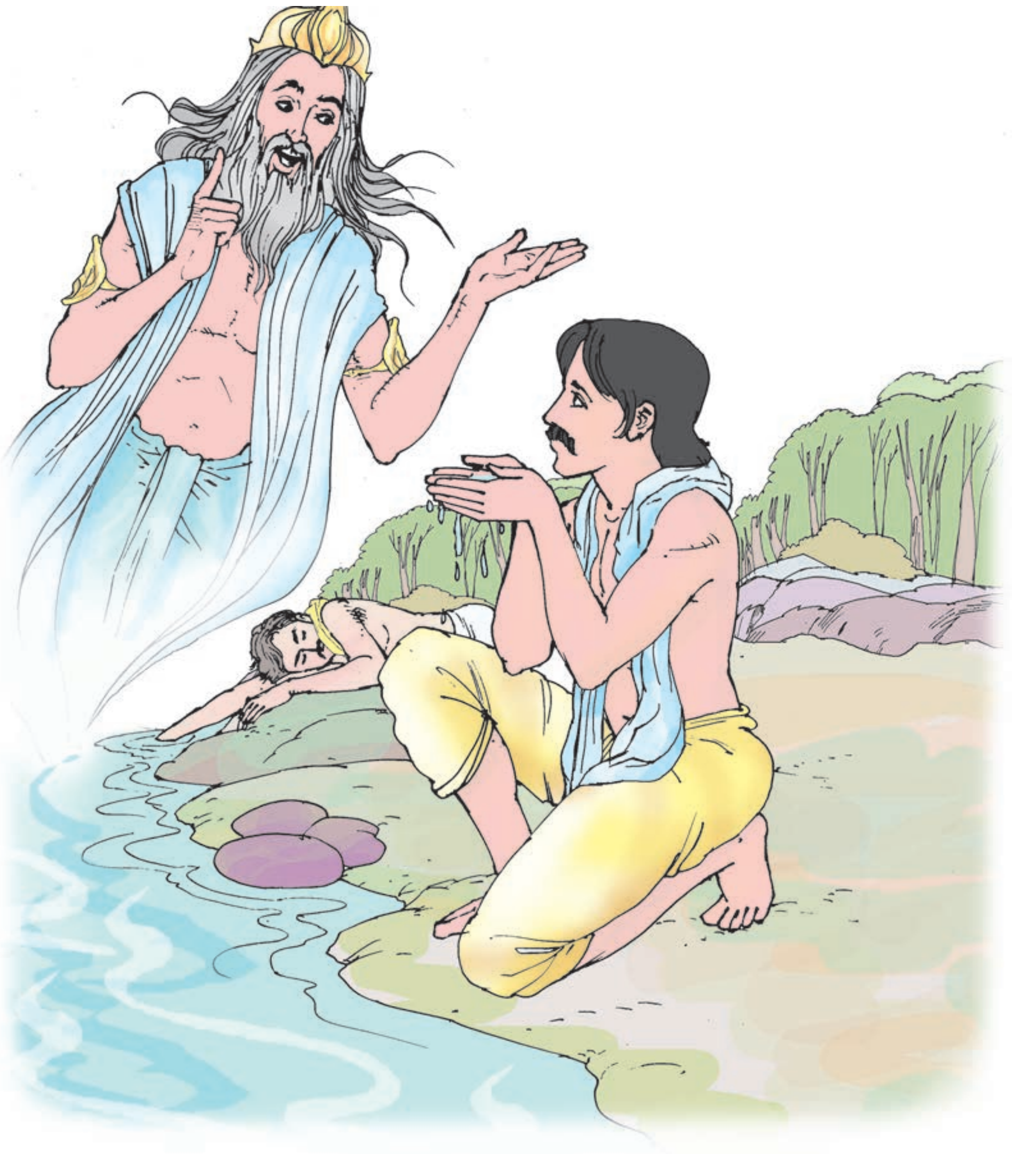

प्र.—कौन सा शास्त्र (विद्या) है, जिसका अध्ययन करके मनुष्य बुद्धिमान बनता है?

उ.—कोई भी शास्त्र ऐसा नहीं है। महान लोगों की संगति से ही मनुष्य बुद्धिमान बनता है।

प्र.—भूमि से भारी चीज़ क्या है?

उ.—संतान को कोख में धारण करनेवाली माता भूमि से भी भारी होती है।

प्र.—आकाश से भी ऊँचा कौन है?

उ.—पिता।

प्र.—हवा से भी तेज़ चलनेवाला कौन है?

उ.—मन।

प्र.—घास से भी तुच्छ कौन सी चीज़ होती है?

उ.—चिंता।

प्र.—विदेश जानेवाले का कौन साथी होता है?

उ.—विद्या।

प्र.—घर ही में रहनेवाले का कौन साथी होता है?

उ.—पत्नी।

प्र.—मरणासन्न वृद्ध का मित्र कौन होता है?

उ.—दान, क्योंकि वही मृत्यु के बाद अकेले चलनेवाले जीव के साथ-साथ चलता है।

प्र.—बरतनों में सबसे बड़ा कौन सा है?

उ.—भूमि ही सबसे बड़ा बरतन है, जिसमें सब कुछ समा सकता है।

प्र.—सुख क्या है?

उ.—सुख वह चीज़ है, जो शील और सच्चरित्रता पर स्थित है।

प्र.—किसके छूट जाने पर मनुष्य सर्वप्रिय बनता है?

उ.—अहंभाव के छूट जाने पर।

प्र.—किस चीज़ के खो जाने से दुख नहीं होता है?

उ.—क्रोध के खो जाने से।

प्र.—किस चीज़ को गँवाकर मनुष्य धनी बनता है?

उ.—लालच को।

प्र.—संसार में सबसे बड़े आश्चर्य की बात क्या है?

उ.—हर रोज़ आँखों के सामने कितने ही प्राणियों को मृत्यु के मुँह में जाते देखकर भी बचे हुए प्राणी, जो यह चाहते हैं कि हम अमर रहें, यही महान आश्चर्य की बात है।

इसी प्रकार यक्ष ने कई अन्य प्रश्न भी किए और युधिष्ठिर ने उन सबके ठीक-ठीक उत्तर दिए। अंत में यक्ष बोला—"राजन्! मैं तुम्हारे मृत भाइयों में से एक को जीवित कर सकता हूँ। तुम जिस किसी को भी चाहो, वह जीवित हो जाएगा।"

युधिष्ठिर ने पलभर सोचा कि किसे जीवित कराऊँ? थोड़ी देर रुककर, बोले—"मेरा छोटा भाई नकुल जी उठे।"

युधिष्ठिर के इस प्रकार बोलते ही यक्ष ने सामने प्रकट होकर पूछा—"युधिष्ठिर! दस हज़ार हाथियों के बलवाले भीमसेन को छोड़कर तुमने नकुल को जीवित करवाना क्यों ठीक समझा?"

युधिष्ठिर ने कहा—"यक्षराज! मैंने जो नकुल को जीवित करवाना चाहा, वह सिर्फ़ इसी कारण कि मेरे पिता की दो पत्नियों में से माता कुंती का बचा हुआ एक पुत्र तो मैं हूँ, मैं चाहता हूँ कि माता माद्री का भी एक पुत्र जीवित हो उठे, जिससे हिसाब बराबर हो जाए। अतः आप कृपा करके नकुल को जीवित कर दें।"

"पक्षपात से रहित मेरे प्यारे पुत्र! तुम्हारे चारों ही भाई जी उठें," यक्ष ने वर दिया।

उन्होंने युधिष्ठिर के सद्‌गुणों से मुग्ध होकर उन्हें छाती से लगा लिया और आशीर्वाद देते हुए

कहा—"बारह बरस के वनवास की अवधि पूरी होने में अब थोड़े ही दिन बाकी रह गए हैं। बारह मास तक जो तुम्हें अज्ञातवास करना है, वह भी सफलता से पूरा हो जाएगा। तुम्हें और तुम्हारे भाइयों को कोई भी नहीं पहचान सकेगा। तुम अपनी प्रतिज्ञा सफलता के साथ पूरी करोगे।" इतना कहकर धर्मदेव अंतर्धान हो गए।

वनवास की कठिनाइयाँ पांडवों ने धीरज के साथ झेल लीं। अर्जुन इंद्रदेव से दिव्यास्त्र प्राप्त करके वापस आ गया। भीमसेन ने भी सुगंधित फूलों वाले सरोवर के पास हनुमान से भेंट कर ली थी और उनका आलिंगन प्राप्त करके दस गुना अधिक शक्तिशाली हो गया था। मायावी सरोवर के पास युधिष्ठिर ने स्वयं धर्मदेव के दर्शन किए और उनसे गले मिलने का सौभाग्य प्राप्त कर लिया था। वनवास की अवधि पूरी होने पर युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों की अनुमति लेकर उन्हें और अपने परिवार के अन्य लोगों से कहा कि वे नगर को लौट जाएँ। युधिष्ठिर की बात मानकर सब लोग नगर लौट आए और यह खबर उड़ गई कि पांडव हम लोगों को आधी रात में सोया हुआ छोड़कर न जाने कहाँ चले गए। यह सुनकर लोगों को बड़ा दुख हुआ। इधर पांडव वन में एक एकांत स्थान में बैठकर आगे के कार्यक्रम पर सोच-विचार करने लगे। युधिष्ठिर ने अर्जुन से पूछा—"अर्जुन! बताओ कि यह तेरहवाँ बरस किस देश में और किस तरह बिताया जाए?"

अर्जुन ने जवाब दिया—"महाराज! इसमें संदेह नहीं है कि हम बारह महीने बड़ी सुगमता के साथ इस प्रकार बिता सकेंगे कि जिसमें किसी को भी हमारा असली परिचय प्राप्त न हो सके। अच्छा यही होगा कि हम सब एक साथ ही रहें। कौरवों के देश के आसपास पांचाल, मत्स्य, वैदेह, बाल्हिक दशार्ण, शूरसेन, मगध आदि कितने ही देश हैं। इसमें से आप जिसे पसंद करें, वहीं जाकर रह जाएँगे। यदि मुझसे पूछा जाए, तो मैं कहूँगा कि मत्स्य देश में जाकर रहना ठीक होगा। इस देश के अधीश राजा विराट हैं। विराट नगर बहुत ही सुंदर और समृद्ध है। मेरी तो ऐसी ही राय है। आगे आप जो उचित समझें।"

युधिष्ठिर ने कहा—"मत्स्याधिपति राजा विराट बड़े शक्ति संपन्न हैं। दुर्योधन की बातों में भी वह आनेवाले नहीं हैं। अतः राजा विराट के यहाँ छिपकर रहा जाए।"

0751CH22

22 अज्ञातवास

सब अपना-अपना भेष बदलकर राजा विराट के यहाँ चाकरी करने गए, तो विराट ने उन्हें अपना नौकर बनाकर रखना उचित न समझा। हर एक के बारे में उनका यही विचार था कि ये तो राज करने योग्य प्रतीत होते हैं। मन में शंका तो हुई, पर पांडवों के बहुत आग्रह करने और विश्वास दिलाने पर राजा ने उन्हें अपनी सेवा में ले लिया। पांडव अपनी-अपनी पसंद

के कामों पर नियुक्त कर लिए गए। युधिष्ठिर 'कंक' के नाम से विराट के दरबारी बन गए और राजा के साथ चौपड़ खेलकर दिन बिताने लगे। भीमसेन 'वल्लभ' के नाम से रसोइयों का मुखिया बनकर रहने लगा। वह कभी-कभी मशहूर पहलवानों से कुश्ती लड़कर या हिंस्र जंतुओं को वश में करके राजा का दिल बहलाया करता था। अर्जुन स्त्री के वेश में 'बृहन्नला' के नाम से रनवास की स्त्रियों, खासकर विराट की कन्या उत्तरा और उसकी सहेलियों एवं दास-दासियों को नाच और गाना-बजाना सिखलाने लगा। नकुल 'ग्रंथिक' के नाम से घोड़ों को साधने, उनकी बीमारियों का इलाज करने और उनकी देखभाल करने में अपनी चतुरता का परिचय देते हुए राजा को खुश करता रहा। सहदेव 'तंतिपाल' के रूप में गाय-बैलों की देखभाल करता रहा। पांचाल-राजा की पुत्री द्रौपदी, जिसकी सेवा-टहल के लिए कितनी ही दासियाँ रहती थीं, अब अपने पतियों की प्रतिज्ञा पूरी करने हेतु दूसरी रानी की आज्ञाकारिणी दासी बन गई। विराट की पत्नी सुदेष्णा की सेवा-सुश्रूषा करती हुई रनवास में 'सैरंध्री' के नाम से काम करने लगी।

रानी सुदेष्णा का भाई कीचक बड़ा ही बलिष्ठ और प्रतापी वीर था। मत्स्य देश की सेना का वही नायक बना हुआ था और अपने कुल के लोगों को साथ लेकर कीचक ने बूढ़े विराटराज की शक्ति और सत्ता में खूब वृद्धि कर दी थी। कीचक की धाक लोगों पर जमी हुई थी। लोग कहा करते थे कि मत्स्य देश का राजा तो कीचक है, विराट नहीं। यहाँ तक कि स्वयं विराट भी कीचक से डरा करते थे और उसका कहा मानते थे। जब से पांडवों के बारह बरस के वनवास की अवधि पूरी हुई थी, तभी से दुर्योधन के गुप्तचरों ने पांडवों की खोज करनी शुरू कर दी थी। इन्हीं दिनों हस्तिनापुर में कीचक के मारे जाने की खबर फैल गई। यह खबर पाते ही दुर्योधन का माथा ठनका कि हो-न-हो कीचक का वध भीम ने ही किया होगा। यह दुर्योधन का अनुमान था। उसने अपना यह विचार राजसभा में प्रकट करते हुए कहा—"मेरा खयाल है कि पांडव विराट के नगर में ही छिपे हुए हैं। मुझे तो यही ठीक लगता है कि मत्स्य देश पर हमला कर देना चाहिए। यदि पांडव वहाँ होंगे, तो निश्चय ही विराट की तरफ़ से हमसे लड़ने आएँगे। यदि हम अज्ञातवास की अवधि पूरी होने से पहले ही उनका पता लगा लेंगे, तो शर्त के अनुसार उन्हें बारह बरस के लिए फिर से वनवास करना होगा। यदि पांडव विराट के यहाँ न भी हुए, तो भी हमारा कुछ नहीं बिगड़ेगा। हमारे तो दोनों हाथों में लड्डू हैं।"

दुर्योधन की यह बात सुनकर त्रिगर्त देश का राजा सुशर्मा उठा और बोला—"राजन्! मत्स्य देश के राजा विराट मेरे शत्रु हैं। कीचक ने भी मुझे बहुत तंग किया था। इस अवसर का लाभ उठाकर मैं उससे अपना पुराना बैर भी चुका लेना चाहता हूँ।"

कर्ण ने सुशर्मा की बात का अनुमोदन किया। फिर सबकी राय से यह निश्चय किया गया कि विराट के राज्य पर राजा सुशर्मा दक्षिण की ओर से हमला करे और जब विराट अपनी सेना लेकर उसका मुकाबला करने जाए, तब ठीक इसी मौके पर उत्तर की ओर से दुर्योधन अपनी सेना लेकर अचानक विराट नगर पर छापा मार दे। इस योजना के अनुसार राजा सुशर्मा ने दक्षिण की ओर से मत्स्य देश पर आक्रमण कर दिया।

मत्स्य देश के दक्षिणी हिस्से पर त्रिगर्तराज की सेना छा गई और गायों के झुंड-के-झुंड सुशर्मा की सेना के कब्ज़े में आ गए। कंक (युधिष्ठिर) ने विराट को सांत्वना देते हुए कहा–"राजन् चिंता न करें। मैं भी अस्त्र-विद्या सीखा हुआ हूँ। मैंने सोचा है कि आपके रसोइये वल्लभ, अश्वपाल ग्रंथिक और तंतिपाल भी बड़े कुशल योद्धा हैं। मैं कवच पहनकर रथारूढ़ होकर युद्धक्षेत्र में जाऊँगा। आप भी उनको आज्ञा दें कि रथारूढ़ होकर मेरे साथ चलें। सबके लिए रथ और शस्त्रास्त्र की आज्ञा दीजिए।"

यह सुनकर विराट बड़े प्रसन्न हो गए। उनकी आज्ञानुसार चारों वीरों के लिए रथ तैयार होकर आ खड़े हुए। अर्जुन को छोड़कर बाकी चारों पांडव उन पर चढ़कर विराट और उनकी सेना समेत सुशर्मा से लड़ने चले गए। राजा सुशर्मा और विराट की सेनाओं में घोर युद्ध हुआ। जब राजा विराट बंदी बना लिए गए, तो उनकी सारी सेना तितर-बितर हो गई। सैनिक भागने लगे। यह हाल देखकर युधिष्ठिर भीमसेन से बोले–"भीम! विराट को अभी छुड़ाकर लाना होगा और सुशर्मा का दर्प चूर करना होगा। यदि तुम सदा की भाँति सिंह की-सी गर्जना करने लग जाओगे, तो शत्रु तुम्हें तुरंत पहचान लेंगे। इसलिए सामान्य लोगों की भाँति रथ पर बैठकर और धनुष-बाण के सहारे लड़ना ठीक होगा।"

आज्ञा मानकर भीमसेन रथ पर से ही सुशर्मा की सेना पर बाणों की बौछार करने लगा। थोड़ी ही देर की लड़ाई के बाद भीम ने विराट को छुड़ा लिया और सुशर्मा को कैद कर लिया। सुशर्मा की पराजय की खबर जब विराट नगर पहुँची, तो नगरवालों ने नगर को खूब सजाकर आनंद मनाया और विजयी राजा विराट के स्वागत के लिए शहर के बाहर चल पड़े। इधर नगर के लोग विजय की खुशियाँ मना रहे थे और राजा की बाट जोह रहे थे, तो उधर उत्तर की ओर से दुर्योधन ने तबाही मचा दी।

राजकुमार उत्तर तो बिलकुल डर गया था और काँप रहा था। उसने बृहन्नला से कहा– "बृहन्नला, मुझे बचाओ इस संकट से! मैं तुम्हारा बड़ा उपकार मानूँगा।"

इस प्रकार राजकुमार उत्तर को भयभीत और घबराया हुआ जानकर बृहन्नला ने उसे समझाते हुए और उसका हौसला बढ़ाते हुए कहा– "राजकुमार, घबराओ नहीं। तुम तो सिर्फ़ घोड़ों की रास सँभाल लो।" इतना कहकर अर्जुन ने उत्तर को सारथी के स्थान पर बैठाकर रास उसके हाथ में पकड़ा दी। राजकुमार ने रास पकड़ ली। आचार्य द्रोण यह सब दूर से देख रहे थे। उनको विश्वास हो रहा था कि यह अर्जुन ही है। उन्होंने यह बात इशारे से भीष्म को जता दी। यह चर्चा सुनकर दुर्योधन कर्ण से बोला–"हमें इस बात से क्या मतलब कि यह औरत के भेष में कौन है! मान लें कि यह अर्जुन ही है। फिर भी हमारा तो उससे काम ही बनता है। शर्त के अनुसार उन्हें और बारह बरस का वनवास भुगतना पड़ेगा।"

अर्जुन ने कौरव-सेना के सामने रथ ला खड़ा किया। उसने गांडीव सँभाल लिया और उस पर डोरी चढ़ाकर तीन बार ज़ोर से टंकार की। कौरव-सेना टंकार-ध्वनि से सचेत होने भी नहीं पाई थी कि अर्जुन ने खड़े होकर शंख की ध्वनि की, जिससे कौरव-सेना थर्रा उठी। उसमें खलबली मच गई कि पांडव आ गए।

0751CH23

23 प्रतिज्ञा-पूर्ति

द्रोण ने कहा–"मालूम होता है, यह तो अर्जुन ही आया है।" आचार्य की शंका और घबराहट दुर्योधन को ठीक न लगी। तभी कर्ण बोला–"पांडव जुए के खेल में जब हार गए थे, तो शर्त के अनुसार उन्हें बारह बरस का वनवास और एक बरस अज्ञातवास में बिताना था। अभी तेरहवाँ बरस पूरा नहीं हुआ है और अर्जुन हमारे सामने प्रकट हो गया है, तो डर किस बात का है? शर्त के अनुसार पांडवों को फिर से बारह बरस वनवास और एक बरस अज्ञातवास में बिताना होगा। अजीब बात है कि सेना के योद्धा भय के मारे काँप रहे हैं, जबकि उन्हें दिल खोलकर लड़ना चाहिए। आप लोग यही रट लगा रहे हैं कि सामने जो रथ आ रहा है, उस पर अर्जुन धनुष ताने हुए बैठा है। पर वहाँ अर्जुन की बजाए परशुराम हों, तो भी हम क्यों डरें? मैं तो अकेला ही जाकर उसका मुकाबला करूँगा और मैंने दुर्योधन को जो वचन दिया था, उसे आज पूरा करके दिखाऊँगा।"

कर्ण को यों दम भरते हुए देखकर कृपाचार्य झल्लाकर बोले–"कर्ण! मूर्खता की बातें न करो। हम सबको एक साथ मिलकर अर्जुन का मुकाबला करना होगा।"

यह सुनकर कर्ण को गुस्सा आ गया। वह बोला–"आचार्य तो अर्जुन की प्रशंसा करते कभी थकते ही नहीं हैं। अर्जुन की शक्ति को बढ़ा-चढ़ाकर बताने की इन्हें एक आदत-सी पड़ गई है। न मालूम यह भय के कारण है या अर्जुन को अधिक प्यार करते हैं, इस कारण है। जो भी हो, मैं अकेला ही डटा रहूँगा।"

जब कर्ण ने आचार्य की यों चुटकी ली, तो कृपाचार्य के भानजे अश्वत्थामा से न रहा गया। वह बोला–"कर्ण! किया तुमने कुछ नहीं है और कोरी डींगें मारने में समय गँवा रहे हो।"

इस प्रकार कौरव-सेना के वीर आपस में ही वाद-विवाद तथा झगड़ा करने लगे। यह देखकर भीष्म बड़े खिन्न हुए। वह बोले–"यह आपस में बैर-विरोध या झगड़े का समय नहीं है। अभी तो सबको एक साथ मिलकर शत्रु का मुकाबला करना है।"

पितामह के इस प्रकार समझाने पर कर्ण, अश्वत्थामा आदि वीर जो उत्तेजित हो रहे थे, शांत हो गए। सबको शांत देखकर भीष्म दुर्योधन से फिर बोले–"बेटा दुर्योधन, अर्जुन प्रकट हो गया, वह ठीक है। पर प्रतिज्ञा का समय कल ही पूरा हो चुका है। चंद्र और सूर्य की गति, वर्ष, महीने और पक्ष विभाग के पारस्परिक संबंध को अच्छी तरह जाननेवाले मेरे कथन की पुष्टि करेंगे। प्रत्येक वर्ष में एक जैसे महीने नहीं होते। मालूम होता है कि तुम लोगों की गणना में भूल हुई है। इसलिए तुम्हें भ्रम हुआ है। जैसे ही अर्जुन ने गांडीव धनुष की टंकार की थी, मैं समझ गया था कि प्रतिज्ञा की अवधि पूरी हो गई है। दुर्योधन! युद्ध शुरू करने से पहले इस बात का निश्चय कर लेना होगा कि पांडवों के साथ संधि कर लें या नहीं। यदि संधि करने की इच्छा है, तो उसके लिए अभी समय है।"

दुर्योधन ने कहा–"पूज्य पितामह! मैं संधि नहीं चाहता हूँ। राज्य तो दूर रहा, मैं तो एक गाँव तक पांडवों को देने के लिए तैयार नहीं हूँ।"

यह सुनकर द्रोणाचार्य की आज्ञानुसार कौरव वीरों ने व्यूह-रचना की। उधर उत्तर ने रथ उसी ओर हाँक दिया, जिधर दुर्योधन था। अर्जुन ने गांडीव पर चढ़ाकर दो-दो बाण आचार्य द्रोण और पितामह भीष्म की ओर इस तरह से छोड़े जो उनके चरणों में जाकर गिरे। इस प्रकार अपने बड़ों की वंदना करके, अर्जुन ने दुर्योधन का पीछा किया। अर्जुन को दुर्योधन का पीछा करते देखकर भीष्म आदि सेना लेकर अर्जुन का पीछा करने लगे। अर्जुन ने उस समय अद्‌भुत रण-कौशल का परिचय दिया। पहले तो उसने कर्ण पर हमला करके उसे बुरी तरह से घायल करके मैदान से भगा दिया। इसके बाद द्रोणाचार्य की बुरी गत होते देखकर अश्वत्थामा आगे बढ़ा और अर्जुन पर बाण बरसाने लगा। अर्जुन ने ज़रा सा हटकर द्रोणाचार्य को खिसक जाने का मौका दे दिया। मौका पाकर आचार्य जल्दी से खिसक गए। उनके चले जाने के बाद अर्जुन अब अश्वत्थामा पर टूट पड़ा। दोनों में भयानक युद्ध होता रहा। अंत में अश्वत्थामा को हार माननी पड़ी। उसके बाद कृपाचार्य की बारी आई और वह भी हार गए। पाँचों महारथी जब इस भाँति परास्त हो गए, तो फिर सेना किसके बल पर टिकती! सारी कौरव-सेना को अर्जुन ने जल्दी ही तितर-बितर कर दिया। सैनिक अपनी जान बचाकर भाग खड़े हुए।

इस भाँति भीषण युद्ध करते हुए भी अर्जुन ने दुर्योधन का पीछा करना न छोड़ा। पाँचों महारथियों द्वारा अर्जुन को एक साथ रोकने का प्रयत्न करने पर भी उसे रोका न जा सका। अर्जुन आखिर दुर्योधन के निकट पहुँच ही गया। उसने दुर्योधन पर भीषण हमला कर दिया। दुर्योधन घायल हो गया और मैदान छोड़कर भाग खड़ा हुआ।

भीष्म ने उससे कहा कि अब वापस हस्तिनापुर लौट चलना चाहिए। भीष्म की सलाह मानकर सारी सेना हार मानकर हस्तिनापुर की ओर लौट चली।

इधर युद्ध से लौटते हुए अर्जुन ने कहा— "उत्तर! अपना रथ नगर की ओर ले चलो। तुम्हारी गायें छुड़ा ली गई हैं। शत्रु भी भाग खड़े हुए हैं। इस विजय का यश तुम्हीं को मिलना चाहिए। इसलिए चंदन लगाकर और फूलों का हार पहनकर नगर में प्रवेश करना।"

रास्ते में अर्जुन ने फिर से बृहन्नला का वेश धारण कर लिया और राजकुमार उत्तर को रथ पर बैठाकर सारथी के स्थान पर खुद बैठ गया। उन्होंने विराटनगर की ओर कुछ दूतों को यह आज्ञा देकर भेज दिया कि जाकर घोषणा कर दो कि राजकुमार उत्तर की विजय हुई है।

24 विराट का भ्रम

0751CH24

त्रिगर्त-राजा सुशर्मा पर विजय प्राप्त करके राजा विराट नगर में वापस आए, तो पुरवासियों ने उनका धूमधाम से स्वागत किया। अंतःपुर में राजकुमार उत्तर को न पाकर राजा ने पूछताछ की तो स्त्रियों ने बड़े उत्साह के साथ बताया कि कुमार कौरवों से लड़ने गए हैं।

राजा यह सुनकर एकदम चौंक उठे। उनके विशेष पूछने पर स्त्रियों ने कौरवों के आक्रमण आदि का सारा हाल सुनाया। यह सब सुनकर राजा का मन चिंतित हो उठा।

राजा को इस प्रकार शोकातुर होते देखकर कंक ने उन्हें दिलासा देते हुए कहा—"आप राजकुमार की चिंता न करें। बृहन्नला सारथी बनकर उनके साथ गई हुई है।"

कंक इस प्रकार बातें कर ही रहे थे कि इतने में उत्तर के भेजे हुए दूतों ने आकर कहा—"राजन्! आपका कल्याण हो! राजकुमार जीत गए। कौरव-सेना तितर-बितर कर दी गई है। गायें छुड़ा ली गई हैं।"

यह सुनकर विराट आँखें फाड़कर देखते रह गए। उन्हें विश्वास ही न होता था कि अकेला उत्तर कौरवों को जीत सकेगा! पुत्र की विजय हुई, यह जानकर विराट, आनंद और अभिमान के मारे फूले न समाए। उन्होंने दूतों को असंख्य रत्न एवं धन पुरस्कार के रूप में देकर खूब आनंद मनाया। इसके बाद राजा ने प्रसन्नता से अंत:पुर में जाकर कहा—"सैरंध्री चौपड़ की गोटें तो ज़रा ले आओ। चलो कंक से दो-दो हाथ चौपड़ खेल लें। आज खुशी के मारे मैं पागल-सा हुआ जा रहा हूँ। मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि मैं अपना आनंद कैसे व्यक्त करूँ!"

दोनों खेलने बैठे। खेलते समय भी बातें होने लगीं। "देखा राजकुमार का शौर्य? विख्यात कौरव-वीरों को मेरे बेटे ने अकेले ही लड़कर जीत लिया!" विराट ने कहा।

"नि:संदेह आपके पुत्र भाग्यवान हैं, नहीं तो बृहन्नला उनकी सारथी बनती ही कैसे?" कंक ने कहा। विराट झुँझलाकर बोले—"आपने भी क्या यह बृहन्नला-बृहन्नला की रट लगा रखी है? मैं अपने कुमार की विजय की बात कर रहा हूँ और आप उसके सारथी की बड़ाई करने लगे।"

युधिष्ठिर ने अब बृहन्नला का नाम लेकर जैसे ही कुछ कहना चाहा, राजा से न रहा गया। अपने हाथ का पासा युधिष्ठिर (कंक) के मुँह पर दे मारा। पासे की मार से युधिष्ठिर के मुख पर चोट लग गई और खून बहने लगा।

इतने में द्वारपाल ने आकर खबर दी कि राजकुमार उत्तर बृहन्नला के साथ द्वार पर खड़े हैं। राजा से भेंट करना चाहते हैं। सुनते ही विराट जल्दी से उठकर बोले—"आने दो! आने दो!!" कंक ने इशारे से द्वारपाल को कहा कि सिर्फ़ राजकुमार को लाओ, बृहन्नला को नहीं। युधिष्ठिर को भय था कि कहीं राजा के हाथों उनको जो चोट लगी है, उसे देखकर अर्जुन गुस्से में कोई गड़बड़ी न कर दे। यही सोच उन्होंने द्वारपाल को ऐसा आदेश दिया। राजकुमार उत्तर ने प्रवेश करके पहले अपने पिता को नमस्कार किया। फिर वह कंक को प्रणाम करना ही चाहता था कि उनके मुख से खून बहता देखकर चकित रह गया। उसे अर्जुन से मालूम हो चुका था कि कंक तो असल में युधिष्ठिर ही हैं।

उसने पूछा—"पिता जी, इनको किसने यह पीड़ा पहुँचाई है?"

विराट ने कहा—"बेटा! क्रोध में मैंने चौपड़ के पासे फेंक मारे। क्यों, तुम उदास क्यों हो गए?"

पिता की बात सुनकर उत्तर काँप गया। विराट कुछ समझ ही न सके कि बात क्या है। उत्तर ने आग्रह किया, तो उन्होंने कंक के पाँव पकड़कर क्षमा-याचना की। इसके बाद उत्तर को

गले लगा लिया और बोले—"बेटा, बड़े वीर हो तुम!"

उत्तर ने कहा—"पिता जी, मैंने कोई सेना नहीं हराई। मैं तो लड़ा भी नहीं।"

बड़ी उत्कंठा के साथ राजा ने पूछा—"कौन था वह वीर? कहाँ है वह? बुला लाओ उसे।"

राजकुमार ने कहा—"पिता जी, मेरा विश्वास है कि आज या कल वह अवश्य प्रकट होंगे।"

थोड़ी देर तक तो पांडवों ने सोचा कि अब ज़्यादा विवाद करना और अपने को छिपाए रखना ठीक नहीं है। यह सोचकर अर्जुन ने पहले राजा विराट को और बाद में सारी सभा को अपना असली परिचय दे दिया। लोगों के आश्चर्य और आनंद का ठिकाना न रहा। सभा में कोलाहल मच गया। राजा विराट का हृदय कृतज्ञता, आनंद और आश्चर्य से तरंगित हो उठा। विराट ने कुछ सोचने के बाद अर्जुन से आग्रह किया कि आप राजकन्या उत्तरा से ब्याह कर लें। अर्जुन ने कहा—"राजन्! आपकी कन्या को मैं नाच और गाना सिखाता रहा हूँ। मेरे लिए वह बेटी के समान है। इस कारण यह उचित नहीं है कि मैं उसके साथ ब्याह करूँ। हाँ, यदि आपकी इच्छा हो, तो मेरे पुत्र अभिमन्यु के साथ उसका ब्याह हो जाए।"

राजा विराट ने यह बात मान ली। इसके कुछ समय बाद दुर्योधन के दूतों ने आकर युधिष्ठिर से कहा—"कुंती-पुत्र! महाराज दुर्योधन ने हमें आपके पास भेजा है। उनका कहना है कि उतावली के कारण प्रतिज्ञा पूरी होने से पहले अर्जुन पहचाने गए हैं। इसलिए शर्त के अनुसार आपको बारह बरस के लिए और वनवास करना होगा।"

इस पर युधिष्ठिर हँस पड़े और बोले—"दूतगण शीघ्र ही वापस जाकर दुर्योधन को कहो कि वह पितामह भीष्म और जानकारों से पूछकर इस बात का निश्चय करे कि अर्जुन जब प्रकट हुआ था, तब प्रतिज्ञा की अवधि पूरी हो चुकी थी या नहीं। मेरा यह दावा है कि तेरहवाँ बरस पूरा होने के बाद ही अर्जुन ने धनुष की टंकार की थी।"

0751CH25

25 मंत्रणा

तेरहवाँ बरस पूरा होने पर पांडव विराट की राजधानी छोड़कर विराटराज के ही राज्य में स्थित 'उपप्लव्य' नामक नगर में जाकर रहने लगे। अज्ञातवास की अवधि पूरी हो चुकी थी। इसलिए पाँचों भाई प्रकट रूप में रहने लगे। आगे का कार्यक्रम तय करने के लिए उन्होंने अपने भाई-बंधुओं एवं मित्रों को बुलाने के लिए दूत भेजे। भाई बलराम, अर्जुन की पत्नी सुभद्रा तथा पुत्र अभिमन्यु और यदुवंश के कई वीरों को लेकर श्रीकृष्ण उपप्लव्य जा पहुँचे। इंद्रसेन आदि राजा अपने-अपने रथों पर चढ़कर उपप्लव्य आ पहुँचे। काशिराज और वीर शैव्य भी अपनी दो अक्षौहिणी सेना के साथ आकर युधिष्ठिर के नगर में पहुँच गए। पांचालराज द्रुपद तीन अक्षौहिणी

सेना लाए। उनके साथ शिखंडी, द्रौपदी का भाई धृष्टद्युम्न और द्रौपदी के पुत्र भी आ पहुँचे। और भी कितने ही राजा अपनी-अपनी सेनाओं को साथ लेकर पांडवों की सहायता के लिए आ गए।

सबसे पहले अभिमन्यु के साथ उत्तरा का विवाह किया गया। इसके बाद विराटराज के सभा भवन में सभी आगंतुक राजा मंत्रणा के लिए इकट्ठे हुए। विराट के पास श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर बैठे। द्रुपद के पास बलराम और सात्यकि। और भी कितने ही प्रतापी राजा सभा में विराजमान थे। सभा में सबके अपने-अपने आसन पर बैठ जाने पर श्रीकृष्ण उठे और बोले–"सम्माननीय बंधुओ और मित्रो! आज हम सब यहाँ इसलिए इकट्ठे हुए हैं कि कुछ ऐसे उपाय सोचें, जो युधिष्ठिर और राजा दुर्योधन के लिए लाभप्रद हों, न्यायोचित हों और जिनसे पांडवों तथा कौरवों का सुयश बढ़े। जो राज्य युधिष्ठिर से छीना गया है वह उनको वापस मिल जाए, तो पांडव शांत हो जाएँगे और दोनों में संधि हो सकती है। मेरी राय में इस बारे में दुर्योधन के साथ उचित रीति से बातचीत करके उसे समझाने के लिए एक ऐसे व्यक्ति को दूत बनाकर भेजना होगा, जो सर्वथा योग्य हो।"

तब बलराम उठे और बोले–"कृष्ण ने जो सलाह दी है, वह मुझे न्यायोचित लगती है। आप लोग जानते ही हैं कि कुंती के पुत्रों को आधा राज्य मिला था। वे उसे जुए में हार गए। अब वे उसे फिर से प्राप्त करना चाहते हैं। यदि शांतिपूर्ण ढंग से, बिना युद्ध किए ही वे अपना राज्य प्राप्त कर सकें, तो उससे न केवल पांडवों बल्कि दुर्योधन तथा सारी प्रजा की भलाई ही होगी।"

बलराम के कहने का सार यह था कि युधिष्ठिर ने जान-बूझकर अपनी इच्छा से जुआ खेलकर राज्य गँवाया था। उनकी इन बातों से यदुकुल का वीर और पांडवों का हितैषी सात्यकि आगबबूला हो उठा। उससे न रहा गया। वह उठकर कहने लगा–"बलराम जी की बातें मुझे ज़रा भी न्यायोचित नहीं मालूम होतीं। युधिष्ठिर को आग्रह करके जुआ खेलने पर विवश किया गया और खेल में कपट से हराया गया था। फिर भी इनकी सज्जनता ही थी, जो प्रण निभाकर उन्होंने खेल की शर्तें पूरी कीं। दुर्योधन और उनके साथी जो यह चिल्ल-पुकार मचा रहे हैं कि बारह महीने पूरे होने से पहले ही पांडवों को उन्होंने पहचान लिया है, सरासर झूठ है और बिलकुल अन्याय है। मेरी राय में दुर्योधन बगैर युद्ध के मानेगा ही नहीं। इसलिए विलंब करना हमारे लिए बिलकुल नासमझी की बात होगी।"

सात्यकि की इन दृढ़तापूर्ण और ज़ोरदार बातों से राजा द्रुपद बड़े खुश हुए। वह उठे और बोले–"सात्यकि ने जो कहा, वह बिलकुल सही है। मैं उनका ज़ोरों से समर्थन करता हूँ। शल्य, धृष्टकेतु, जयत्सेन, कैकय आदि राजाओं के पास अभी से दूत भेज देने चाहिए। इसका मतलब यह नहीं है कि सुलह का प्रयत्न ही न किया जाए, बल्कि मेरी राय में तो राजा धृतराष्ट्र के पास अभी से किसी सुयोग्य व्यक्ति को दूत बनाकर भेजना बहुत ही ज़रूरी है।"

राजा द्रुपद के कह चुकने के बाद श्रीकृष्ण उठे और बोले–"सज्जनो! पांचालराज ने जो सलाह दी है वह बिलकुल ठीक है। भैया बलराम जी और मुझ पर कौरवों का जितना हक है, उतना ही पांडवों का भी है। हम यहाँ किसी का पक्षपात करने नहीं, बल्कि उत्तरा के विवाह में शामिल होने के लिए आए हैं। हम अब अपने

स्थान पर वापस चले जाएँगे। (द्रुपद की ओर देखकर) द्रुपदराज! आप सभी राजाओं में श्रेष्ठ हैं, बुद्धि एवं आयु में भी बड़े हैं। हमारे लिए तो आप आचार्य के समान हैं। धृतराष्ट्र भी आपकी बड़ी इज़्ज़त करते हैं। द्रोण और कृपाचार्य तो आपके लड़कपन के साथी हैं। इसलिए उचित तो यही होगा कि जो कुछ दूत को समझाना-बुझाना हो, वह आप ही समझा दें और उन्हें हस्तिनापुर भेज दें। यदि इसके बाद दुर्योधन न्यायोचित रूप से संधि के लिए तैयार न हो, तो सब लोग सब तरह से तैयार हो जाएँ और हमें भी कहला भेजें।"

यह निश्चय हो जाने के बाद श्रीकृष्ण अपने साथियों सहित द्वारका लौट गए। विराट, द्रुपद, युधिष्ठिर आदि युद्ध की तैयारियाँ करने में लग गए। चारों ओर दूत भेजे गए। सब मित्र-राजाओं को सेना इकट्ठी करने का संदेश भेज दिया गया। पांडवों के पक्ष में राजा लोग अपनी-अपनी सेना सज्जित करने लगे। इधर ये तैयारियाँ होने लगीं, उधर दुर्योधन आदि भी चुपचाप बैठे नहीं रहे। वे भी युद्ध की तैयारियों में जी-जान से लग गए। उन्होंने अपने मित्रों के यहाँ दूतों द्वारा संदेश भेजे, जिससे सेनाएँ इकट्ठी की जा सकें। इस तरह सारा भारतवर्ष आगामी युद्ध के कोलाहल से गूँजने लगा।

शांति-चर्चा के लिए हस्तिनापुर को दूत भेजने के बाद पांडव और उनके मित्र राजागण ज़ोरों से युद्ध की तैयारी में जुट गए। श्रीकृष्ण के पास अर्जुन स्वयं पहुँचा। इधर दुर्योधन को भी इस बात की खबर मिल गई कि उत्तरा के विवाह से निवृत्त होकर श्रीकृष्ण द्वारका लौट गए हैं, सो वह भी द्वारका को रवाना हो गया। संयोग की बात है कि जिस दिन अर्जुन द्वारका पहुँचा, ठीक उसी दिन दुर्योधन भी वहाँ पहुँचा। श्रीकृष्ण के भवन में भी दोनों एक साथ ही प्रविष्ट हुए। श्रीकृष्ण उस समय आराम कर रहे थे। अर्जुन और दुर्योधन दोनों ही उनके निकट संबंधी थे। इसलिए दोनों ही बेखटके शयनागार में चले गए। दुर्योधन आगे था, अर्जुन ज़रा पीछे। कमरे में प्रवेश करके दुर्योधन श्रीकृष्ण के सिरहाने एक ऊँचे आसन पर जा बैठा। अर्जुन श्रीकृष्ण के पैताने ही हाथ जोड़े खड़ा रहा। श्रीकृष्ण की नींद खुली, तो उन्होंने सामने अर्जुन को खड़े देखा। उन्होंने उठकर उसका स्वागत किया और कुशल पूछी। बाद में घूमकर आसन पर बैठे दुर्योधन को देखा, तो उसका भी स्वागत किया और कुशल-समाचार पूछे। उसके बाद दोनों के आने का कारण पूछा।

दुर्योधन जल्दी से पहले बोला-"श्रीकृष्ण, ऐसा मालूम होता है कि हमारे और पांडवों के बीच जल्दी ही युद्ध छिड़ेगा। यदि ऐसा हुआ, तो मैं आपसे प्रार्थना करने आया हूँ कि आप मेरी सहायता करें। सामान्यत: यह नियम है कि जो पहले आए, उसका काम पहले हो। आप विद्वज्जनों में श्रेष्ठ हैं। आप सबके पथ-प्रदर्शक हैं। अत: बड़ों की चलाई हुई प्रथा पर चलें और पहले मेरी सहायता करें।"

यह सुनकर श्रीकृष्ण बोले-"राजन्! आप पहले पहुँचे ज़रूर, लेकिन मैंने तो पहले अर्जुन को ही देखा था। मेरी निगाह में तो दोनों ही बराबर हैं। इसलिए कर्तव्यभाव से मैं दोनों की ही समान रूप से सहायता करूँगा। पूर्वजों की चलाई हुई प्रथा यह है कि जो आयु में छोटा हो, उसी को पहले पुरस्कार देना चाहिए। अर्जुन आपसे

आयु में छोटा है। इसलिए मैं पहले उससे ही पूछता हूँ कि वह क्या चाहता है?"

अर्जुन की तरफ़ मुड़कर श्रीकृष्ण बोले—"पार्थ! सुनो! मेरे वंश के लोग नारायण कहलाते हैं। वे बड़े साहसी और वीर भी हैं। उनकी एक भारी सेना इकट्ठी की जा सकती है। मेरी यह सेना एक तरफ़ होगी। दूसरी तरफ़ अकेला मैं रहूँगा। मेरी प्रतिज्ञा यह भी है कि युद्ध में मैं न तो हथियार उठाऊँगा और न ही लड़ूँगा। तुम भली-भाँति सोच लो, तब निर्णय करो। इन दो में से जो पसंद हो, वह ले लो।"

बिना किसी हिचकिचाहट के अर्जुन बोला—"आप शस्त्र उठाएँ या न उठाएँ, आप चाहे लड़ें या न लड़ें, मैं तो आपको ही चाहता हूँ।"

दुर्योधन के आनंद की सीमा न रही। वह सोचने लगा कि अर्जुन ने खूब धोखा खाया और श्रीकृष्ण की वह लाखों वीरोंवाली भारी-भरकम सेना सहज में ही उसके हाथ आ गई। यह सोचता और हर्ष से फूला न समाता दुर्योधन बलराम जी के यहाँ पहुँचा और उनको सारा हाल कह सुनाया। बलराम जी ने दुर्योधन की बातें ध्यान से सुनीं और बोले—"दुर्योधन! मालूम होता है कि उत्तरा के विवाह के अवसर पर मैंने जो कुछ कहा था उसकी खबर तुम्हें मिल गई है। कृष्ण से भी मैंने कई बार तुम्हारी बात छेड़ी और उसको समझाता रहा कि कौरव और पांडव दोनों ही हमारे बराबर के संबंधी हैं। किंतु कृष्ण मेरी सुने तब न! मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं युद्ध में तटस्थ रहूँगा, क्योंकि जिधर कृष्ण न हो, उस तरफ़ मेरा रहना ठीक नहीं है। अर्जुन की सहायता मैं करूँगा नहीं, इस कारण मैं अब तुम्हारी भी सहायता करने योग्य नहीं रहा। मेरा तटस्थ रहना ही ठीक होगा।"

हस्तिनापुर को लौटते हुए दुर्योधन का दिल बल्लियों उछल रहा था। वह सोच रहा था कि अर्जुन बड़ा बुद्धू बना। द्वारका की इतनी बड़ी सेना अब मेरी हो गई है और बलराम जी का स्नेह तो मुझ पर है ही। श्रीकृष्ण भी निःशस्त्र और सेनाविहीन हो गए। यही सोचते-विचारते दुर्योधन खुशी-खुशी अपनी राजधानी में आ पहुँचा।

कृष्ण ने पूछा—"सखा अर्जुन! एक बात बताओ। तुमने सेना-बल के बजाए मुझ निःशस्त्र को क्यों पसंद किया?"

अर्जुन बोला—"बात यह है कि आप में वह शक्ति है कि जिससे आप अकेले ही इन तमाम राजाओं से लड़कर इन्हें कुचल सकते हैं।"

अर्जुन की बात सुनकर कृष्ण मुसकराए और बोले—"अच्छा, यह बात है!" और अर्जुन को बड़े प्रेम से विदा किया। इस प्रकार श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथी बने और पार्थ-सारथी की पदवी प्राप्त की।

मद्र देश के राजा शल्य, नकुल-सहदेव की माँ माद्री के भाई थे। जब उन्हें यह खबर मिली कि पांडव उपप्लव्य के नगर में युद्ध की तैयारियाँ कर रहे हैं, तो उन्होंने एक भारी सेना इकट्ठी की और उसे लेकर पांडवों की सहायता के लिए उपप्लव्य की ओर रवाना हो गए।

राजा शल्य की सेना बहुत बड़ी थी। उपप्लव्य की ओर जाते हुए रास्ते में जहाँ कहीं भी शल्य विश्राम करने के लिए डेरा डालते थे, तो उनकी सेना का पड़ाव कोई डेढ़ योजन तक लंबा फैल जाता था।

जब दुर्योधन ने सुना कि राजा शल्य विशाल सेना लेकर पांडवों की सहायता के लिए जा रहे हैं, तो उसने किसी प्रकार इस सेना को अपनी

ओर कर लेने का निश्चय कर लिया। अपने कुशल कर्मचारियों को उसने आज्ञा दी कि रास्ते में जहाँ कहीं भी राजा शल्य और उनकी सेना डेरा डाले, उसे हर तरह की सुविधा पहुँचाई जाए। शल्य पर दुर्योधन के आदर-सत्कार का कुछ ऐसा असर हुआ कि उन्होंने पुत्रों के समान प्यार करने योग्य भानजों (पांडवों) को छोड़ दिया और दुर्योधन के पक्ष में रहकर युद्ध करने का वचन दे दिया। उपप्लव्य में राजा शल्य का खूब स्वागत किया गया। मामा को आया देखकर नकुल और सहदेव के आनंद की तो सीमा ही न रही। जब भावी युद्ध की चर्चा छिड़ी, तो शल्य ने युधिष्ठिर को बताया कि किस प्रकार दुर्योधन ने धोखा देकर उनको अपने पक्ष में कर लिया है।

युधिष्ठिर बोला—"मामा जी! मौका आने पर निश्चय ही महाबली कर्ण आपको अपना सारथी बनाकर अर्जुन का वध करने का प्रयत्न करेगा। मैं यह जानना चाहता हूँ कि उस समय आप अर्जुन की मृत्यु का कारण बनेंगे या अर्जुन की रक्षा का प्रयत्न करेंगे? मैं यह पूछकर आपको असमंजस में नहीं डालना चाहता था, पर फिर भी पूछने का मन हो गया।"

मद्रराज ने कहा—"बेटा युधिष्ठिर, मैं धोखे में आकर दुर्योधन को वचन दे बैठा। इसलिए युद्ध तो मुझे उसकी ओर से ही करना होगा। पर एक बात बताए देता हूँ कि कर्ण मुझे सारथी बनाएगा, तो अर्जुन के प्राणों की रक्षा ही होगी।"

उपप्लव्य में महाराज युधिष्ठिर और द्रौपदी को मद्रराज शल्य ने दिलासा दिया और कहा—"जीत उन्हीं की होती है, जो धीरज से काम लेते हैं। युधिष्ठिर! कर्ण और दुर्योधन की बुद्धि फिर गई है। अपनी दुष्टता के फलस्वरूप निश्चय ही उनका सर्वनाश होकर रहेगा।"

26 राजदूत संजय

0751CH26

उपप्लव्य नगर में रहते हुए पांडवों ने अपने मित्र राजाओं को दूतों द्वारा संदेश भेजकर कोई सात अक्षौहिणी सेना एकत्र की। उधर कौरवों ने भी अपने मित्रों द्वारा काफ़ी बड़ी सेना इकट्ठी कर ली, जो ग्यारह अक्षौहिणी तक हो गई थी। पांचाल नरेश के पुरोहित, जो युधिष्ठिर की ओर से राजदूत बनकर हस्तिनापुर गए थे, नियत समय पर धृतराष्ट्र की राजसभा में पहुँचे। यथाविधि कुशल-समाचार पूछने के बाद पांडवों की ओर से संधि का प्रस्ताव करते हुए वह बोले—"युधिष्ठिर का विचार है कि युद्ध से संसार का नाश ही होगा और इसी कारण वे युद्ध से घृणा करते हैं। वे लड़ना नहीं चाहते। इसलिए न्याय तथा पहले के समझौते के अनुसार यह उचित होगा कि आप उनका हिस्सा देने की कृपा करें। इसमें विलंब न कीजिए।"

यह सुनकर विवेकशील और महारथी भीष्म बोले—"यही न्यायोचित है कि उन्हें उनका राज्य वापस दे दिया जाए।"

भीष्म की बात कर्ण को अप्रिय लगी। वह बड़े क्रोध के साथ भीष्म की बात काटकर दूत की ओर देखता हुआ बोला—"तेरहवाँ बरस पूरा होने से पहले ही उन्होंने प्रतिज्ञा भंग करके अपने आपको प्रकट कर दिया है। इसलिए शर्त के अनुसार उनको फिर से बारह बरस के लिए वनवास भोगना पड़ेगा।"

कर्ण के इस प्रकार बीच में उनकी बात काटकर बोलने से भीष्म को बड़ा क्रोध आया। वह बोले—"राधा-पुत्र! तुम बेकार की बातें कर रहे हो। यदि हम युधिष्ठिर के दूत के कहे अनुसार संधि नहीं करेंगे, तो निश्चय ही युद्ध छिड़ जाएगा और उसमें दुर्योधन आदि सबको पराजित होकर मृत्यु के मुँह में जाना पड़ेगा।"

भीष्म की बातों से सभा में खलबली मचते देखकर धृतराष्ट्र बोले—"सारे संसार की भलाई को ध्यान में रखकर मैंने यह निश्चय किया है कि अपनी तरफ़ से संजय को दूत बनाकर पांडवों के पास भेजा जाए।"

फिर धृतराष्ट्र ने संजय को बुलाकर कहा—"संजय, तुम पांडु-पुत्रों के पास जाओ। वहाँ श्रीकृष्ण, सात्यकि, विराट आदि राजाओं से भी कहना कि मैंने सप्रेम उन सबकी कुशल पूछी है। वहाँ जाकर मेरी ओर से युद्ध न होने की चेष्टा करो।"

संजय उपप्लव्य को रवाना हो गए। वहाँ पहुँचकर युधिष्ठिर की सभा में सबको विधिवत् प्रणाम करके बोले—"धर्मराज! महाराज धृतराष्ट्र ने आपकी कुशल पूछी है और कहा है कि वह युद्ध की बात नहीं करना चाहते। वह तो आपकी मित्रता चाहते हैं।"

संजय की ये बातें सुनकर राजा युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए और बोले—"मैं तो संधि ही चाहता हूँ। युद्ध का विचार करते ही मेरा मन घृणा से भर जाता है। यदि हमें अपना राज्य वापस मिल जाए, तो हम अपने सारे कष्ट भूल जाएँगे।"

संजय ने कहा—"युधिष्ठिर! धृतराष्ट्र के पुत्र न तो अपने पिता की बात पर ध्यान देते हैं, न भीष्म की ही कुछ सुनते हैं। आप सदा से ही न्याय पर स्थिर हैं। आप युद्ध की चाह न करें।"

संजय की ये बातें सुनकर युधिष्ठिर बोले—"संजय! श्रीकृष्ण दोनों पक्षों के लोगों के हितचिंतक हैं। वह जो सलाह देंगे, वैसा ही मैं करूँगा।"

तभी श्रीकृष्ण बोले—"मैं स्वयं हस्तिनापुर जाना उचित समझता हूँ। मेरी यही इच्छा है कि कौरवों से संधि की जा सकती हो, तो की जाए।"

श्रीकृष्ण के बाद युधिष्ठिर फिर बोले—"संजय! कौरवों की राजसभा में जाकर महाराज धृतराष्ट्र को मेरी तरफ़ से प्रार्थनापूर्वक संदेश सुनाना कि कम-से-कम हमें पाँच गाँव ही दे दें। हम पाँचों भाई इसी से संतोष कर लेंगे और संधि करने को तैयार होंगे।"

युधिष्ठिर का यह संदेश लेकर संजय पांडवों तथा श्रीकृष्ण से विदा होकर हस्तिनापुर को रवाना हो गए। राजसभा में आकर उन्होंने युधिष्ठिर की सभा में जो चर्चा हुई थी, उसका सारा हाल कह सुनाया।

संजय के इस प्रकार कहने पर भीष्म दुर्योधन को दोबारा समझाने के बाद धृतराष्ट्र से बोले—"राजन्! कर्ण बार-बार यही दम भर रहा है कि खत्म कर डालूँगा। किंतु मैं कहता हूँ कि पांडवों की शक्ति का सोलहवाँ हिस्सा भी उसमें नहीं है। तुम्हारा पुत्र उसी के कहे में चलता है और अपने

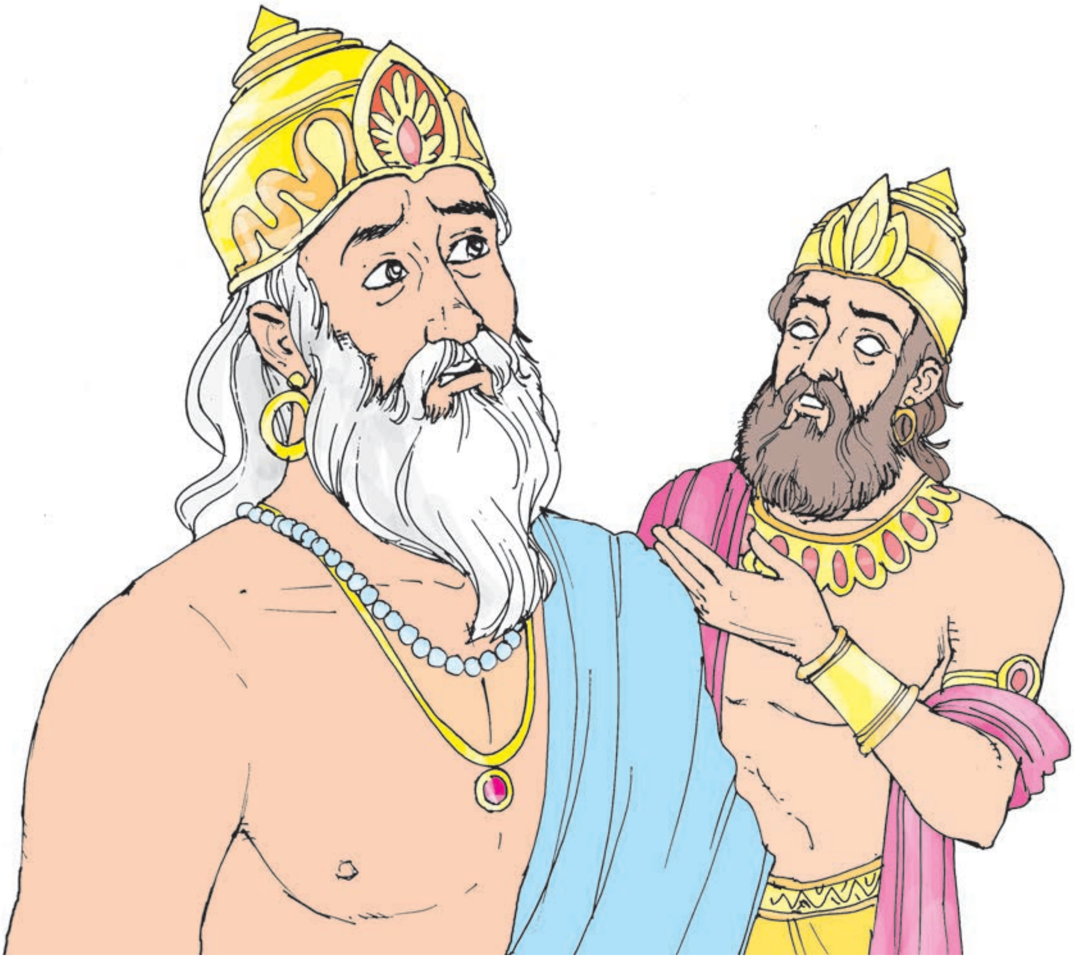

नाश का आप ही आयोजन कर रहा है। विराट नगर पर आक्रमण करते समय, जब अर्जुन ने हमारा दर्प चूर कर दिया था, तब कर्ण वहीं तो था! गंधर्व जब दुर्योधन को कैद करके ले गए थे, तब यह डपोरशंख कर्ण कहाँ छिप गया था? गंधर्वों को अर्जुन ने ही तो भगाया था और दुर्योधन को उनकी कैद से मुक्त किया था।"

इसके बाद धृतराष्ट्र ने संतप्त होकर दुर्योधन को समझाया—"बेटा, भीष्म पितामह जो कहते हैं, वही करने योग्य है। युद्ध न होने दो। संधि करना ही उचित है।"

दुर्योधन, जो यह सब बातें सुन रहा था, उठा और अपने पिता को साहस बँधाता हुआ बोला—"पिता जी, आप भी कैसे भोले हैं, जो यह भी नहीं समझते हैं कि स्वयं युधिष्ठिर हमारा सैन्य-बल देखकर घबरा उठे हैं और इसी कारण आधे राज्य की बात छोड़कर अब केवल पाँच गाँवों की याचना कर रहे हैं। क्या उनकी इस पाँच गाँववाली माँग से यह सिद्ध नहीं होता है कि हमारी ग्यारह अक्षौहिणी सेना देखकर युधिष्ठिर के मन में भय उत्पन्न हो गया है? इतने पर भी आपको हमारी विजय के बारे में संदेह हो रहा है। यह बड़े आश्चर्य की बात है!"

धृतराष्ट्र ने समझाते हुए कहा—"बेटा, जब पाँच गाँव देने से ही युद्ध टलता है, तो बाज़ आओ युद्ध से। तुम्हारे पास तो फिर भी पूरा-का-पूरा राज्य रह जाता है। अब हठ न करो।"

लेकिन इस उपदेश से दुर्योधन चिढ़ गया और बोला—"मैं तो सुई की नोंक के बराबर भूमि भी पांडवों को नहीं देना चाहता हूँ। आपकी जो इच्छा हो, करें। अब इसका फैसला युद्धभूमि में ही होगा।" यह कहता-कहता दुर्योधन उठ खड़ा हुआ और बाहर चला आया। सभा में खलबली मच गई और इस गड़बड़ी में सभा भंग हो गई।

इधर संजय के उपप्लव्य से रवाना हो जाने के बाद युधिष्ठिर श्रीकृष्ण से बोले—"वासुदेव! संजय तो महाराज धृतराष्ट्र के मानो दूसरे प्राण हैं। उनकी बातों से मुझे महाराज के मन की बात स्पष्ट रूप से मालूम हो गई है। मैंने तो कहला भेजा है कि मैं तो केवल पाँच गाँवों से ही संतोष कर लूँगा, किंतु ऐसा लगता है कि वे दुष्ट इतना भी देने को तैयार नहीं होंगे। इस बारे में अब आप ही सलाह दे सकते हैं।"

युधिष्ठिर की बातें सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा—"युधिष्ठिर! मैंने भी एक बार स्वयं हस्तिनापुर जाने का इरादा कर लिया है। तुम लोगों के स्वत्वों को युद्ध से बचाने की चेष्टा करूँगा। यदि मैं सफल हुआ, तो इससे सारे संसार का कल्याण होगा।"

युधिष्ठिर ने कहा—"श्रीकृष्ण! मुझे लगता है कि आप वहाँ न जाएँ। दुर्योधन का कोई ठिकाना नहीं है कि वह कब क्या कर बैठे! मुझे भय है कि कहीं वह आप पर ही प्रहार न कर दे।"

श्रीकृष्ण बोले—"धर्मपुत्र! मैं दुर्योधन से भली-भाँति परिचित हूँ। फिर भी हमें प्रयत्न करना ही चाहिए। किसी के यह कहने की गुंजाइश ही मैं नहीं रखना चाहता कि मुझे शांति स्थापित करने का जो प्रयास करना चाहिए था, वह नहीं किया। इसलिए मेरा तो जाना ही ठीक होगा।"

इतना कहकर श्रीकृष्ण हस्तिनापुर के लिए विदा हुए।

0751CH27

27 शांतिदूत श्रीकृष्ण

शांति की बातचीत करने के उद्देश्य से श्रीकृष्ण हस्तिनापुर गए। उनके साथ सात्यकि भी गए थे। रास्ते में कुशस्थल नामक स्थान में वह एक रात विश्राम करने के लिए ठहरे। हस्तिनापुर में जब यह खबर पहुँची कि श्रीकृष्ण पांडवों की ओर से दूत बनकर संधि चर्चा के लिए आ रहे हैं, तो धृतराष्ट्र ने आज्ञा दी कि नगर को खूब सजाया जाए। पुरवासियों ने द्वारिकाधीश के स्वागत की धूमधाम से तैयारियाँ कीं। दु:शासन का भवन दुर्योधन के भवन से अधिक ऊँचा और सुंदर था। इसलिए धृतराष्ट्र ने आज्ञा दी कि उसी भवन में श्रीकृष्ण को ठहराने का प्रबंध किया जाए। श्रीकृष्ण हस्तिनापुर पहुँच गए। पहले श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र के भवन में गए। फिर धृतराष्ट्र से विदा लेकर वह विदुर के भवन में गए। कुंती वहीं कृष्ण की प्रतीक्षा में बैठीं थीं।

श्रीकृष्ण को देखते ही उन्हें अपने पुत्रों का स्मरण हो आया। श्रीकृष्ण ने उन्हें मीठे वचनों से सांत्वना दी और उनसे विदा लेकर दुर्योधन के भवन में गए। दुर्योधन ने श्रीकृष्ण का शानदार स्वागत किया और उचित आदर-सत्कार करके भोजन का न्यौता दिया। श्रीकृष्ण ने कहा–"राजन्! जिस उद्देश्य को लेकर मैं यहाँ आया हूँ, वह पूरा हो जाए, तब मुझे भोजन का न्यौता देना उचित होगा।" यह कहकर वे विदुर के यहाँ चले गए और वहाँ भोजन करके विश्राम किया।

इसके बाद श्रीकृष्ण और विदुर में आगे के कार्यक्रम के बारे में सलाह हुई। विदुर ने कहा–"उनकी सभा में आपका जाना भी उचित नहीं है।"

दुर्योधनादि के स्वभाव से जो भी परिचित थे, उनका भी यही कहना था कि वे लोग कोई-न-कोई कुचक्र रचकर श्रीकृष्ण के प्राणों तक को हानि पहुँचाने की चेष्टा करेंगे। विदुर की बातें ध्यान से सुनने के बाद श्रीकृष्ण बोले–"मेरे प्राणों की चिंता आप न करें।"

दूसरे दिन सवेरे दुर्योधन और शकुनि ने आकर श्रीकृष्ण से कहा–"महाराज धृतराष्ट्र आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।" इस पर विदुर को साथ लेकर श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र के भवन में गए।

वासुदेव के सभा में प्रविष्ट होते ही सभी सभासद उठ खड़े हुए। श्रीकृष्ण ने बड़ों को विधिवत् नमस्कार किया और आसन पर बैठे। राजदूत एवं सम्भ्रांत अतिथि-सा उनका सत्कार किया गया। इसके बाद श्रीकृष्ण उठे और पांडवों की माँग सभा के सामने रखी। फिर वह धृतराष्ट्र की ओर देखकर बोले–"राजन्! पांडव शांतिप्रिय हैं, परंतु साथ ही यह भी समझ लीजिए कि वे युद्ध के लिए भी तैयार हैं। पांडव आपको पिता स्वरूप मानते हैं। ऐसा उपाय करें, जिससे आप भाग्यशाली बनें।"

यह सुनकर धृतराष्ट्र ने कहा–"सभासदो! मैं भी वही चाहता हूँ, जो श्रीकृष्ण को प्रिय है।"

इस पर श्रीकृष्ण दुर्योधन से बोले–"मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि पांडवों को आधा राज्य लौटा दो और उनके साथ संधि कर लो। यदि यह बात स्वीकृत हो गई, तो स्वयं पांडव तुम्हें युवराज और धृतराष्ट्र को महाराज के रूप में सहर्ष स्वीकार कर लेंगे।"

भीष्म और द्रोण ने भी दुर्योधन को बहुत समझाया। फिर भी दुर्योधन ने अपना हठ नहीं छोड़ा। वह श्रीकृष्ण का प्रस्ताव स्वीकार करने पर राज़ी न हुआ। धृतराष्ट्र ने दोबारा पुत्र से आग्रह किया कि श्रीकृष्ण का प्रस्ताव मान ले, नहीं तो कुल का सर्वनाश हो जाएगा। दुर्योधन ने अपने आपको निर्दोष सिद्ध करने की जो चेष्टा की थी, उससे श्रीकृष्ण को हँसी आ गई। तभी श्रीकृष्ण ने दुर्योधन को उन सब अत्याचारों का विस्तार से स्मरण दिलाया, जो उसने पांडवों पर किए थे। भीष्म, द्रोण आदि प्रमुख वृद्धों ने भी श्रीकृष्ण के इस वक्तव्य का समर्थन किया।

यह देखकर दुःशासन क्रुद्ध हो उठा और दुर्योधन से बोला–"भाई, मालूम होता है, ये लोग आपको कैद करके कहीं पांडवों के हवाले न कर दें। इसलिए चलिए, यहाँ से निकल चलें।" इस पर दुर्योधन उठा और अपने भाइयों के साथ सभा से बाहर चला गया।

इसी बीच धृतराष्ट्र ने विदुर से कहा–"तुम ज़रा गांधारी को सभा में ले आओ। उसकी समझ

बहुत स्पष्ट है और वह दूर की सोच सकती है। हो सकता है, उसकी बातें दुर्योधन मान ले।" यह सुनकर विदुर ने सेवकों को आज्ञा देकर गांधारी को बुला लाने को भेजा। गांधारी भी सभा में आई और धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को भी सभा में फिर से बुलाया। दुर्योधन सभा में लौट आया। क्रोध के कारण उसकी आँखें लाल हो रही थीं। गांधारी ने भी उसे कई तरह से समझाया, परंतु दुर्योधन ये बातें माननेवाला कब था! अपनी माँ को भी उसने मना कर दिया और दोबारा सभा से निकलकर चला गया। बाहर जाकर दुर्योधन ने अपने साथियों के साथ मिलकर एक षड्यंत्र रचा और राजदूत श्रीकृष्ण को पकड़ने का प्रयत्न किया। श्रीकृष्ण ने तो पहले ही से इन बातों की कल्पना कर ली थी। दुर्योधन की यह चेष्टा देखकर वह हँस पड़े। श्रीकृष्ण उठे। सात्यकि और विदुर उनके दोनों ओर हो गए। सब सभासदों से विधिवत् आज्ञा ली। सभा से चलकर सीधे कुंती के पास पहुँचे और उनको सभा का सारा हाल कह सुनाया।

कुंती बोली–"हे कृष्ण! अब तुम्हीं मेरे पुत्रों के रक्षक हो।" श्रीकृष्ण रथ पर आरूढ़ होकर उपप्लव्य की ओर तेज़ी से रवाना हो गए। युद्ध अब अनिवार्य हो गया था। श्रीकृष्ण के हस्तिनापुर से लौटते ही शांति स्थापना की जो थोड़ी-बहुत आशा थी, वह भी लुप्त हो गई। कुंती को जब पता चला कि कुलनाशी युद्ध छिड़ेगा ही, तो वह बहुत व्याकुल हो गईं।

चिंता के कारण आकुल हो रही कुंती अपने पुत्रों की सुरक्षा का विचार करती हुई गंगा के किनारे पहुँची, जहाँ कर्ण रोज़ संध्या-वंदन किया करता था। मध्याह्न के बाद कर्ण का जप पूरा हुआ, तो उसे यह जानकर असीम आश्चर्य हुआ कि महाराज पांडु की पत्नी और पांडवों की माता कुंती ही उसका उत्तरीय सिर पर लिए खड़ी हैं।

कर्ण ने शिष्टतापूर्वक अभिवादन करके कहा–"आज्ञा दीजिए, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?"

कुंती ने गद्‌गद स्वर में कहा–"कर्ण! यह न समझो कि तुम केवल सूत-पुत्र ही हो। न तो राधा तुम्हारी माँ है, न अधिरथ तुम्हारे पिता। तुमको जानना चाहिए कि राजकुमारी पृथा की कोख से तुम उत्पन्न हुए हो। तुम सूर्य के अंश हो।" थोड़ा सुस्ताने के बाद वह फिर बोली–"बेटा! दुर्योधन के पक्ष में होकर तुम अपने भाइयों से ही शत्रुता कर रहे हो। धृतराष्ट्र के लड़कों के आश्रित रहना तुम्हारे लिए अपमान की बात है। तुम अर्जुन के साथ मिल जाओ, वीरता से लड़ो और राज्य प्राप्त करो। वे भी तुम्हारे अधीन रहेंगे और तुम उनसे घिरे हुए प्रकाशमान होओगे।"

कर्ण माता कुंती का यह अनुरोध सुनकर बोला–"माँ! यदि इस समय मैं दुर्योधन का साथ छोड़कर पांडवों की तरफ़ चला गया, तो लोग मुझे ही कायर कहेंगे। अब, जब युद्ध होना निश्चित हो गया है, तो मैं उनको मझधार में कैसे छोड़ जाऊँ? यह तुम्हारी कैसी सलाह है? आज मेरा कर्तव्य यही है कि मैं पांडवों के विरुद्ध सारी शक्ति लगाकर लड़ूँ। मैं तुमसे असत्य क्यों बोलूँ? मुझे क्षमा कर दो। लेकिन हाँ, तुम्हारी भी बात एकदम व्यर्थ नहीं जाएगी। अब मैं यह करूँगा कि अर्जुन को छोड़कर और किसी पांडव के प्राण नहीं लूँगा। या तो अर्जुन इस युद्ध में काम आएगा, या मैं। दोनों में से एक को तो

मरना ही पड़ेगा। शेष चारों पांडव मुझे चाहे कितना भी तंग करें, मैं उनको नहीं मारूँगा। माँ, तुम्हारे तो पाँच पुत्र हर हालत में रहेंगे, चाहे मैं मर जाऊँ, चाहे अर्जुन। हम दोनों में से एक बचेगा और बाकी चार तो रहेगें ही। तुम चिंता न करो।"

अपने बड़े पुत्र की ये सारी बातें सुनकर माता कुंती का मन बहुत विचलित हुआ, परंतु उन्होंने उसे अपने गले से लगा लिया और बोली–"तुम्हारा कल्याण हो।" कर्ण को इस प्रकार आशीर्वाद देकर कुंती अपने महल में चली आई।

0751CH28

28 पांडवों और कौरवों के सेनापति

श्रीकृष्ण उपप्लव्य लौट आए और हस्तिनापुर की चर्चा का हाल पांडवों को सुनाया। युधिष्ठिर अपने भाइयों से बोले–"भैया! अब सेना सुसज्जित करो और व्यूह-रचना सुचारु रूप से कर लो।"

पांडवों की विशाल सेना को सात हिस्सों में बाँट दिया गया। द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, शिखंडी, सात्यकि, चेकितान, भीमसेन आदि सात महारथी इन सात दलों के नायक बने। अब प्रश्न उठा कि सेनापति किसे बनाया जाए? सबकी राय ली गई। अंत में युधिष्ठिर ने कहा–"सबने जिन-जिन वीरों के नाम लिए हैं, वे सभी सेनापति बनने के योग्य हैं। किंतु अर्जुन की राय मुझे हर दृष्टि से ठीक प्रतीत होती है। मैं उसी का समर्थन करता हूँ। धृष्टद्युम्न को ही सारी सेना का नायक बनाया जाए।"

वीर कुमार धृष्टद्युम्न को पांडवों की सेना का नायक बनाया गया और उसका विधिवत् अभिषेक किया गया। अपने कोलाहल से दिशाओं को गुँजाती हुई पांडवों की सेना मैदान में आ पहुँची।

उधर कौरवों की सेना के नायक थे भीष्म पितामह। भीष्म ने कहा–"युद्ध का संचालन करके अपना ऋण अवश्य चुका दूँगा। लड़ाई की घोषणा करते समय मेरी सम्मति किसी ने नहीं ली थी। इसी कारण मैंने निश्चय कर लिया था कि जान-बूझकर स्वयं आगे होकर पांडु-पुत्रों का वध मैं नहीं करूँगा। कर्ण, तुम लोगों का बहुत ही प्यारा है। शुरू से ही वह मेरा तथा मेरी सम्मतियों का विरोध करता आया है। अतः अच्छा हो कि अगर वह सेनापति बन जाए। इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी।"

कर्ण का उद्दंड व्यवहार भीष्म को सदा से ही बहुत खटकता रहता था। कर्ण ने भी हठ कर लिया था कि जब तक भीष्म जीवित रहेंगे, तब तक वह युद्ध-भूमि में प्रवेश नहीं करेगा। भीष्म के मारे जाने के बाद ही वह लड़ाई में भाग लेगा और केवल अर्जुन को ही मारेगा। दुर्योधन ने सब सोच-समझकर पितामह भीष्म की शर्त मान ली और उन्हीं को सेनापति नियुक्त किया। फलतः कर्ण तब तक के लिए युद्ध से विरत रहा।

पितामह के नायकत्व में कौरव-सेना समुद्र की भाँति लहरें मारती हुई कुरुक्षेत्र की ओर प्रवाहित हुई।

इधर युद्ध की तैयारियाँ हो रही थीं और उधर एक रोज़ बलराम पांडवों की छावनी में एकाएक जा पहुँचे। बलराम जी ने अपने बड़े-बूढ़े विराटराज और द्रुपदराज को विधिवत् प्रणाम किया और धर्मराज के पास बैठ गए। वह बोले–"कितनी ही बार मैंने कृष्ण को कहा था कि हमारे लिए तो पांडव और कौरव दोनों ही एक समान हैं। इसमें हमें बीच में पड़ने की आवश्यकता नहीं है, पर कृष्ण ने मेरी बात नहीं मानी। अर्जुन के प्रति उसका इतना स्नेह है कि उसने तुम्हारे पक्ष में रहकर युद्ध करना भी स्वीकार कर लिया। जिस तरफ़ कृष्ण हो, उसके विपक्ष में मैं भला कैसे जाऊँ? भीम और दुर्योधन दोनों ने ही मुझसे गदा-युद्ध सीखा है। दोनों ही मेरे शिष्य हैं। दोनों पर मेरा एक जैसा प्यार है। इन दोनों कुरुवंशियों को यों आपस में लड़ते-मरते देखना मुझसे सहन नहीं होता है। लड़ो तुम लोग, परंतु यह सब देखने के लिए मैं यहाँ नहीं रह सकता हूँ। मुझे अब संसार से विराग हो गया है। अत: मैं जा रहा हूँ।"

युद्ध के समय सारे भारतवर्ष में दो ही राजा युद्ध में सम्मिलित नहीं हुए और तटस्थ रहे–एक बलराम और दूसरे भोजकट के राजा रुक्मी। रुक्मी की छोटी बहन रुक्मिणी श्रीकृष्ण की पत्नी थी।

कुरुक्षेत्र में होनेवाले युद्ध के समाचार सुनकर रुक्मी एक अक्षौहिणी सेना लेकर युद्ध में सम्मिलित होने को गया। उसने सोचा कि यह अवसर वासुदेव की मित्रता प्राप्त कर लेने के लिए ठीक होगा। इसलिए वह पांडवों के पास पहुँचा और अर्जुन से बोला–"पांडु-पुत्र! आपकी सेना से शत्रु-सेना कुछ अधिक मालूम होती है। इसी कारण मैं आपकी सहायता करने आया हूँ।"

यह सुनकर अर्जुन हँसते हुए रुक्मी से बोला–"राजन्! आप बिना शर्त के सहायता करना चाहते हैं, तो आपका स्वागत है। नहीं तो आपकी जैसी इच्छा।"

यह सुनकर रुक्मी बड़ा क्रुद्ध हुआ और अपनी सेना लेकर दुर्योधन के पास चला गया।

रुक्मी ने दुर्योधन से कहा–"पांडव मेरी मदद नहीं चाहते हैं। इस कारण मैं आपकी सहायता हेतु आया हूँ।"

पांडवों ने जिसकी सहायता स्वीकार नहीं की, हमें उसकी सहायता स्वीकार करने की ज़रूरत नहीं है।" यह कहकर दुर्योधन ने भी रुक्मी की सहायता ठुकरा दी। बेचारा रुक्मी दोनों तरफ़ से अपमानित होकर भोजकट वापस लौट गया। रुक्मी कर्तव्य से प्रेरित होकर नहीं, बल्कि अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के उद्देश्य से कुरुक्षेत्र गया और अपमानित हुआ।

कुरुक्षेत्र के मैदान में दोनों तरफ़ की सेनाएँ लड़ने को तैयार खड़ी थीं। उन दिनों की रीति के अनुसार दोनों पक्ष के वीरों ने युद्ध-नीति पर चलने की प्रतिज्ञाएँ लीं।

कौरवों की सेना की व्यूह-रचना देखकर युधिष्ठिर ने अर्जुन को आज्ञा दी–"एक जगह सब वीरों को इकट्ठे रहकर लड़ना होगा। अत: सेना को सूची-मुख (सूई की नोंक के समान) व्यूह में सज्जित करो।"

इस प्रकार दोनों पक्षों की सेनाओं की व्यूह-रचना हो गई। अर्जुन ने युद्ध के लिए तैयार

हुए वीरों को देखा, तो उसके मन में शंका हुई कि हम यह क्या करने जा रहे हैं। उसने अपनी यह शंका श्रीकृष्ण पर प्रकट की। तब अर्जुन के इस भ्रम को दूर करने के लिए श्रीकृष्ण ने कुरुक्षेत्र में जिस कर्मयोग का उपदेश दिया, वह तो विश्वविख्यात है।

सब लोग इसी की राह देख रहे थे कि कब युद्ध शुरू हो, पर एकाएक पांडव-सेना के बीच में हलचल मच गई। देखते क्या हैं कि युधिष्ठिर ने अचानक अपना कवच और धनुष-बाण उतारकर रथ पर रख दिया है और रथ से उतरकर हाथ जोड़े कौरव-सेना की हथियारबंद पंक्तियों को चीरते हुए भीष्म की ओर पैदल जा रहे हैं। बिना सूचना दिए उनको इस प्रकार जाते देखकर दोनों ही पक्षवाले अचंभे में पड़ गए।

अर्जुन तुरंत रथ से कूद पड़ा और युधिष्ठिर के पीछे कौरव-सेना में घुस गया। दूसरे, पांडव और श्रीकृष्ण भी उनके साथ ही हो लिए।

इतने में श्रीकृष्ण बोले–"अर्जुन, मैं समझ गया हूँ कि महाराज युधिष्ठिर की इच्छा क्या है। बिना बड़ों की आज्ञा लिए युद्ध करना अनुचित माना जाता है। धर्मराज का उद्देश्य अच्छा ही है।"

शत्रु-सेना के हथियारबंद वीरों की कतार को चीरते हुए युधिष्ठिर सीधे पितामह भीष्म के पास पहुँचे और झुककर उनके चरण छुए। फिर बोले–"पितामह! हमने आपके साथ लड़ने का

दु:साहस कर ही लिया। कृपया हमें युद्ध की अनुमति दीजिए और आशीर्वाद भी कि हम युद्ध में विजय प्राप्त करें।"

भीष्म बोले–"बेटा युधिष्ठिर, मुझे तुमसे यही आशा थी। मैं स्वतंत्र नहीं हूँ। विवश होकर मुझे तुम्हारे विपक्ष में रहना पड़ रहा है। फिर भी मेरी यही कामना है कि रण में विजय तुम्हारी हो।"

भीष्म की आज्ञा और आशीर्वाद प्राप्त कर लेने के बाद युधिष्ठिर आचार्य द्रोण के पास गए और परिक्रमा करके उनको दंडवत् किया। आचार्य ने आशीर्वाद देते हुए कहा–"मैं भी कौरवों के अधीन हूँ। उनका साथ देने को विवश हूँ। फिर भी मेरी यही कामना है कि जीत तुम्हारी ही हो।" आचार्य द्रोण से आशीष लेकर धर्मराज ने आचार्य कृप एवं मद्रराज शल्य के पास जाकर उनके भी आशीर्वाद प्राप्त किए और सेना में लौट आए।

युद्ध शुरू हुआ, तो पहले बड़े योद्धाओं में द्वंद्व होने लगा। बराबर की ताकतवाले एक ही जैसे हथियार लेकर दो-दो की जोड़ी में लड़ने लगे। अर्जुन के साथ भीष्म, सात्यकि के साथ कृतवर्मा और अभिमन्यु बृहत्पाल के साथ भिड़ गए। भीमसेन दुर्योधन से जा भिड़ा। युधिष्ठिर शल्य के साथ लड़ने लगे। धृष्टद्युम्न ने आचार्य द्रोण पर सारी शक्ति लगाकर हमला बोल दिया और इसी प्रकार प्रत्येक वीर युद्ध-धर्म का पालन करता हुआ द्वंद्व करने लगा।

भीष्म के नेतृत्व में कौरव-वीरों ने दस दिन तक युद्ध किया। दस दिन के बाद भीष्म आहत हुए और द्रोणाचार्य सेनापति नियुक्त किए गए। द्रोणाचार्य भी जब खेत रहे, तो कर्ण को सेनापतित्व ग्रहण करना पड़ा। सत्रहवें दिन की लड़ाई में कर्ण का भी स्वर्गवास हो गया। इसके बाद शल्य ने कौरवों का सेनापति बनकर सेना का संचालन किया। इस प्रकार महाभारत का युद्ध कुल अट्ठारह दिन चला।

0751CH29

29 पहला, दूसरा और तीसरा दिन

कौरवों की सेना के अग्रभाग पर प्राय: दु:शासन ही रहा करता था और पांडवों की सेना के आगे भीमसेन। बाप ने बेटे को मारा। बेटे ने पिता के प्राण लिए। भानजे ने मामा का वध किया। मामा ने भानजे का काम तमाम किया। युद्ध का यह दृश्य था। पहले दिन की लड़ाई में भीष्म ने पांडवों पर ऐसा हमला किया कि पांडव-सेना थर्रा उठी। युधिष्ठिर के मन में भय छा गया। दुर्योधन आनंद के कारण झूमता हुआ दिखाई दिया। पांडव घबराहट के मारे श्रीकृष्ण के पास गए। श्रीकृष्ण युधिष्ठिर और पांडव-सेना का धीरज बँधाने लगे।

पहले दिन की लड़ाई में पांडव-सेना की जो दुर्गति हुई थी, उससे सबक लेकर पांडव-सेना के नायक धृष्टद्युम्न ने दूसरे दिन बड़ी सतर्कता के साथ व्यूह-रचना की और सैनिकों का साहस बँधाया।

सारी कौरव-सेना में तीन ही ऐसे वीर थे, जो अर्जुन का मुकाबला कर सकते थे–भीष्म, द्रोण और कर्ण। सारे कौरव-वीरों को अपना प्रतिरोध करते हुए देखकर अर्जुन ने अपना गांडीव हाथ में लेकर इस कुशलता से युद्ध किया कि कौरव-सेना के सभी महारथी देखकर दंग रह गए। भीष्म ने अर्जुन पर ज़ोरों से हमला कर दिया। इस प्रकार अर्जुन और भीष्म के बीच बड़ी देर तक युद्ध होता रहा। फिर भी हार-जीत का कोई निर्णय न हो सका। एक ओर यह अद्‌भुत युद्ध हो रहा था, तो दूसरी ओर द्रुपद का पुत्र धृष्टद्युम्न, जो द्रोणाचार्य का जन्म से बैरी था, आचार्य के साथ युद्धरत था।

सात्यकि द्वारा छोड़े गए एक बाण ने भीष्म के सारथी को मार गिराया। सारथी के गिर जाने पर घोड़े हवा से बातें करते हुए अत्यंत वेग से भाग खड़े हुए। इससे कौरव-सेना में बड़ी तबाही मची। सब कौरव-वीर पश्चिम की ओर देख-देखकर यह मनाने लगे कि कब सूर्यास्त हो और युद्ध बंद हो, ताकि इस तबाही से मुक्ति मिले।

सूर्य अस्त हुआ। संध्या हुई और युद्ध बंद हुआ। पहले दिन की लड़ाई के बाद पांडवों में जो आतंक छाया हुआ था, वह दूसरे दिन के युद्ध का अंत होने के बाद कौरवों के मन पर छा गया। तीसरे दिन दोनों सेनाओं की व्यूह-रचना हो जाने के बाद दोनों पक्ष फिर से युद्ध में लग गए और एक-दूसरे पर हमला करने लगे। भीमसेन द्वारा चलाए एक बाण से दुर्योधन ज़ोर का धक्का खाकर बेहोश हो गया और रथ पर गिर पड़ा। यह देखकर उसके सारथी ने सोचा कि दुर्योधन को लड़ाई के मैदान से हटा लिया जाए, जिससे कौरव-सेना को दुर्योधन के मूर्च्छित होने का पता न चले। इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर सारथी जल्दी से रथ को युद्ध-भूमि से हटाकर छावनी की ओर ले गया, किंतु उसने जो सोचा था, हुआ उससे उलटा ही। अनुशासन के टूटने और सेना में खलबली मच जाने का कारण वह स्वयं ही बन गया। सैनिकों में भगदड़ मच गई।

इधर पांडवों की सेना में आनंद छाया हुआ था। दिन के पहले भाग में उन्होंने कौरव-सेना पर जिस प्रकार हमला करके उसे तितर-बितर कर दिया था, उन्हें इस बात की आशा न थी कि भीष्म इस बिखरी हुई सेना को फिर से इकट्ठा करके उन पर टूट पड़ेंगे। भीष्म ने ऐसा भयानक हमला किया कि पांडव-सेना के पाँव उखड़ गए। श्रीकृष्ण, अर्जुन और शिखंडी के प्रयत्नों के बावजूद सेना अनुशासन में न रह सकी। भीष्म के छोड़े गए कई बाण अर्जुन एवं श्रीकृष्ण के शरीर पर लग ही गए। इस पर श्रीकृष्ण को असीम क्रोध आ गया। उनसे रहा न गया। उन्होंने खुद भीष्म को मारने की ठानी। अर्जुन यह देखकर सन्न रह गया। उसने सोचा कि यह तो बड़ा अनर्थ हो जाएगा। वह रथ से उतरा और श्रीकृष्ण के पीछे भागा। अर्जुन के आग्रह पर श्रीकृष्ण वापस लौटकर फिर से अर्जुन का रथ हाँकने लगे। श्रीकृष्ण के इस कार्य से अर्जुन उत्तेजित हो उठा और कौरव-सेना पर वह वज्र के समान गिरा। शाम होते-होते कौरव-सेना बड़ी बुरी तरह से हार गई। थकी-हारी सेना मशालों की रोशनी में अपने शिविरों को लौट चली।

30 चौथा, पाँचवाँ और छठा दिन

0751CH30

पौ फटी। लड़ाई शुरू हो गई। शल्य का पुत्र मारा गया। भीमसेन ने दुर्योधन के आठ भाई मार डाले। दुर्योधन ने भी निशाना साधकर भीमसेन की छाती पर एक भीषण अस्त्र चलाया। चोट खाकर भीम मूर्च्छित-सा होकर रथ पर बैठ गया। अपने पिता का यह हाल देखकर घटोत्कच के क्रोध का ठिकाना न रहा। वह आपे से बाहर हो गया और उसने भयानक युद्ध शुरू कर दिया। घटोत्कच के भीषण आक्रमण के आगे कौरव-सेना टिक न सकी। सेना को विह्वल होती देखकर भीष्म ने युद्ध बंद कर दिया और सेना लौटा दी। उस दिन की लड़ाई में दुर्योधन के कितने ही भाई मारे गए। चिंताग्रस्त दुर्योधन अपने शिविर में जाकर व्यथित हृदय से बैठ गया। उसकी आँखें भर आईं। संजय कुरुक्षेत्र के मैदान का आँखों देखा हाल धृतराष्ट्र को सुनाता जाता था। वहाँ का बयान सुनते-सुनते धृतराष्ट्र व्यथित हो जाते थे। वह दुख उनकी सहनशक्ति से भारी हो जाता था, तो वह कुछ कह-सुनकर अपना शोक-भार हलका कर लेते। दुर्योधन बड़ी देर तक विचारों में डूबा रहा। इसी प्रकार सोचते-सोचते उसे नींद आ गई।

सुबह होने पर दोनों सेनाएँ फिर युद्ध के लिए सज्जित हो गईं। लड़ाई शुरू हो गई। उस दिन संध्या होते-होते अर्जुन ने हज़ारों कौरव-सैनिकों का जीवन समाप्त कर दिया। यह देखकर पांडव-सेना के वीरों ने अर्जुन को चारों ओर से घेर लिया और ज़ोर का जय-जयकार कर उठे। उधर सूरज डूबा और भीष्म ने युद्ध बंद करने की आज्ञा दी। दोनों ओर के थके-थकाए सैनिक अपनी-अपनी छावनी की ओर चले गए।

छठे दिन सवेरे युद्ध छिड़ते ही दोनों तरफ़ की जन-हानि बड़ी तादाद में होने लगी। पर अंत में द्रोण ने वह तबाही मचाई कि पांडव-सेना के पाँव उखड़ गए।

इसके बाद तो अंधाधुंध युद्ध होने लगा। अंत में दुर्योधन बुरी तरह घायल हुआ और बेहोश होकर रथ से गिर पड़ा। तब कृपाचार्य ने बड़ी चतुराई से उसे रथ पर ले लिया, जिससे दुर्योधन की जान बच गई। आकाश लाल हो चला। सूरज डूबना ही चाहता था। फिर भी कुछ मुहूर्त तक युद्ध जारी रहा। सूर्यास्त के बाद युद्ध समाप्त हुआ। आज का युद्ध इतना भयंकर था कि धृष्टद्युम्न और भीमसेन के सकुशल शिविर में लौट आने पर युधिष्ठिर ने बड़ा आनंद मनाया। उनकी खुशी की सीमा न थी।

0751CH31

31 सातवाँ, आठवाँ और नवाँ दिन

सातवें दिन का युद्ध केंद्रित न था, बल्कि कई मोर्चों पर व्याप्त था। प्रत्येक मोर्चे पर विख्यात वीरों में घमासान युद्ध होता रहा। एक मोर्चे पर अर्जुन के विरुद्ध स्वयं भीष्म डटे हुए थे। एक स्थान पर द्रोणाचार्य और विराटराज में भीषण युद्ध हो रहा था। एक अन्य मोर्चे पर शिखंडी

और अश्वत्थामा में लड़ाई हो रही थी। एक स्थान पर धृष्टद्युम्न और दुर्योधन युद्धरत थे। एक ओर नकुल और सहदेव अपने मामा शल्य पर बाण बरसा रहे थे। दूसरी ओर अवंती के दोनों राजा युधामन्यु से लड़ते दिखाई दे रहे थे। एक मोर्चे पर दुर्योधन के चार भाइयों की अकेला भीमसेन खबर ले रहा था, तो दूसरे मोर्चे पर घटोत्कच और भगदत्त में भयानक द्वंद्व छिड़ा हुआ था। एक ओर मोर्चे पर अलंबुष और सात्यकि की टक्कर थी। युधिष्ठिर का श्रुतायु के साथ द्वंद्व हो रहा था, जबकि कृपाचार्य और चेकितान एक अन्य मोर्चे पर लड़ रहे थे। द्रोणाचार्य के साथ लड़ाई में विराट को हार खानी पड़ी। विराट कुमार उत्तर एवं श्वेत पहले ही दिन की लड़ाई में काम आ चुके थे। सातवें दिन के युद्ध में तीसरे कुमार शंख ने पिता के

देखते-देखते प्राण त्याग दिए, परंतु यह युद्ध अधिक देर नहीं चला। सूरज अस्त होने लगा और युद्ध बंद हुआ।

आठवें दिन का युद्ध शुरू हुआ, तो पहले ही धावे में भीमसेन ने धृतराष्ट्र के आठ बेटों का वध कर दिया। एक ऐसी घटना हुई कि जिससे अर्जुन शोक-विह्वल हो उठा। उसका लाड़ला, साहसी और वीर बेटा इरावान, जो एक नागकन्या से पैदा हुआ था, उस दिन खेत रहा। इधर भीमसेन के पुत्र घटोत्कच ने जब देखा कि इरावान मारा गया, तो उसने इतने ज़ोर से गर्जना की कि जिससे सारी सेना थर्रा उठी। उसके बाद वह कौरव-सेना पर टूट पड़ा और घोर प्रलय मचाने लगा। युधिष्ठिर को लगा कि घटोत्कच पर कोई आफ़त आई है। उन्होंने तत्काल भीमसेन को घटनास्थल पर भेज दिया। भीमसेन के आ जाने पर तो युद्ध की भयानकता और भी अधिक बढ़ गई, परंतु जल्दी ही सूर्यास्त हो गया और युद्ध बंद हुआ।

नवें दिन के युद्ध में अभिमन्यु और अलंबुष में घोर संग्राम छिड़ गया। धनंजय के पुत्र ने पिता की ही भाँति रण-कौशल का परिचय दिया। पांडवों की सेना की पितामह ने उस दिन बड़ी दुर्गत की।

यहाँ तक कि अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों को ही बड़ी पीड़ा हुई। सैनिक बहुत पीड़ित हो रहे थे। थोड़ी देर में सूर्यास्त हुआ और उस दिन युद्ध बंद कर दिया गया।

0751CH32

32 भीष्म शर-शय्या पर

दसवें दिन का युद्ध शुरू हुआ। आज पांडवों ने शिखंडी को आगे किया था। आगे-आगे शिखंडी और उसके पीछे अर्जुन। शिखंडी की आड़ से अर्जुन ने पितामह पर बाण बरसाए। शिखंडी के बाणों ने वृद्ध पितामह का वक्ष-स्थल बींध डाला। भीष्म ने अपने चेहरे पर ज़रा भी शिकन न आने दी और शिखंडी के बाणों का प्रत्युत्तर नहीं दिया। अर्जुन ने जब यह देखा कि पितामह प्रतिरोध नहीं कर रहे हैं, तो ज़रा जी कड़ा करके उसने भीष्म के मर्म-स्थानों को लक्ष्य करके तीखे बाणों से बींधना शुरू कर दिया। भीष्म का सारा शरीर बिंध गया, पर इतने पर भी उनका मुख मलिन न हुआ। भीष्म ने अर्जुन पर शक्ति-अस्त्र चलाया। अर्जुन ने उसे तीन बाणों से काट गिराया। अब भीष्म को यह निश्चय हो गया था कि आज का युद्ध उनका आखिरी युद्ध होगा। इस कारण वह हाथ में ढाल-तलवार लेकर रथ से उतरने लगे। अर्जुन का बाण बरसाना जारी था। उसके बाणों ने पितामह के शरीर में उँगली रखने की भी जगह न छोड़ी थी। पितामह के सारे शरीर में बाण-ही-बाण घुस गए थे। ऐसी अवस्था में ही भीष्म रथ से सिर के बल ज़मीन पर गिर पड़े। भीष्म गिर तो गए, लेकिन उनका शरीर भूमि से नहीं लगा। सारे शरीर में जो बाण लगे हुए थे वे एक तरफ़ से घुसकर दूसरी तरफ़ निकल आए थे। भीष्म का शरीर ज़मीन पर न

गिरकर उन तीरों के सहारे ही ऊपर उठा रहा। पितामह अर्जुन से बोले–"बेटा अर्जुन, मेरे सिर के नीचे कोई सहारा नहीं है। वह लटक रहा है। कोई ठीक-सा सहारा तो लगा दो।"

भीष्म ने ये वचन उसी अर्जुन से कहे, जिसने अभी-अभी प्राणहारी बाणों से उनको बींध डाला था। भीष्म का आदेश सुनते ही अर्जुन ने अपने तरकस से तीन तेज़ बाण निकाले और पितामह का सिर उनकी नोंक पर रखकर उनके लिए उपयुक्त तकिया बना दिया।

भीष्म बोले–"हे राजागण! अर्जुन ने मेरे लिए जो सिरहाना बनाया है, उसी से मैं प्रसन्न हुआ हूँ। अभी मेरा शरीर-त्याग करने का उचित समय नहीं हुआ है। अत: सूर्यनारायण के उत्तरायण होने तक मैं यहीं और ऐसा ही पड़ा रहूँगा। आप लोगों में से जो भी उस समय तक जीवित बचें, वे आकर मुझे देख जाएँ।"

इसके बाद पितामह ने अर्जुन से कहा–"बेटा! मेरा सारा शरीर जल रहा है और प्यास लग रही है। थोड़ा पानी तो पिलाओ।"

अर्जुन ने तुरंत धनुष तानकर भीष्म की दाहिनी बगल में पृथ्वी पर बड़े ज़ोर से एक तीर मारा। बाण पृथ्वी में घुसकर सीधा पाताल में जा लगा। उसी क्षण उस स्थल से जल का एक सोता फूट निकला। और पितामह भीष्म ने अमृत के समान मधुर और शीतल जल पीकर अपनी प्यास बुझाई। वह बहुत ही खुश और प्रसन्न दिखाई दिए।

जब कर्ण को यह पता चला कि पितामह भीष्म घायल होकर रणक्षेत्र में पड़े हैं, तो वह उनके पास गया। प्रणाम करके जब कर्ण उठा, तो पितामह को उसके मुख पर भय की छाया-सी दिखाई दी। यह देखकर भीष्म का दिल भर आया। शरीर पर लगे हुए बाणों से होनेवाले कष्ट को दबाकर बोले–"बेटा, तुम राधा के पुत्र नहीं, कुंती के पुत्र हो। सूर्यपुत्र! मैंने तुमसे कभी द्वेष नहीं किया। अकारण ही तुमने पांडवों से वैर रखा। इसी कारण तुम्हारे प्रति मेरा मन मलिन हुआ। तुम्हारी दान-वीरता और शूरता से मैं भली-भाँति परिचित हूँ। इसमें कोई संदेह नहीं कि शूरता में तुम कृष्ण और अर्जुन की बराबरी कर सकते हो। तुम पांडवों में ज्येष्ठ हो। इस कारण तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम उनसे मित्रता कर लो। मेरी यही इच्छा है कि युद्ध में मेरे सेनापतित्व के साथ ही पांडवों के प्रति तुम्हारे वैरभाव का भी आज ही अंत हो जाए।"

यह सुनकर कर्ण बड़ी नम्रता के साथ बोला–"पितामह! मैं जानता हूँ कि मैं कुंती का पुत्र हूँ, लेकिन यह भी मुझे मालूम है कि मैं सूत-पुत्र नहीं हूँ, लेकिन यह बात मुझसे नहीं हो सकती कि अब मैं दुर्योधन का साथ छोड़ दूँ और उनके शत्रुओं से जा मिलूँ। मेरा कर्तव्य यही है कि मैं दुर्योधन के ही पक्ष में रहकर युद्ध करूँ। आप कृपया मुझे इस बात की अनुमति दें कि मैं दुर्योधन की तरफ़ से लड़ूँ। मैंने जो कुछ किया या कहा है, उसमें जितने दोष हों, उसके लिए मुझे क्षमा कर दें।"

कर्ण का कथन भीष्म बड़े ध्यान से सुनते रहे। उसके बाद बोले–"जो तुम्हारी इच्छा हो, वही करो।"

भीष्म पितामह से आशीष पाकर कर्ण बहुत प्रसन्न हुआ और रथ पर चढ़कर युद्धक्षेत्र में जा पहुँचा। कर्ण को देखते ही दुर्योधन आनंद के मारे फूल उठा। भीष्म के बिछोह का जो दुख उसके

लिए दु:सह-सा प्रतीत हो रहा था, अब कर्ण के आ जाने पर किसी तरह उसे भूल जाना उसके लिए संभव मालूम होने लगा।

दुर्योधन और कर्ण इस बारे में सोच-विचार करने लगे कि अब सेनापति किसे बनाया जाए। रीति से द्रोणाचार्य का सेनापति-पद पर अभिषेक हुआ। द्रोणाचार्य ने पाँच दिन तक कौरवों की सेना का संचालन करते हुए घोर युद्ध किया। यद्यपि अवस्था में वह बूढ़े थे, फिर भी सात्यकि, भीम, अर्जुन, धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु, द्रुपद, काशिराज आदि सुविख्यात वीरों के विरुद्ध द्रोणाचार्य अकेले ही भिड़ जाते थे और एक-एक को खदेड़ देते थे। पाँचों दिन तक उनके हाथों पांडवों की सेना बहुत ही सताई गई। आचार्य द्रोण ने पांडव-सेना की नाक में दम कर दिया। द्रोणाचार्य के सेनापतित्व ग्रहण करने के बाद दुर्योधन, कर्ण और दु:शासन- तीनों ने आपस में सलाह करके एक योजना बनाई। उसके अनुसार दुर्योधन आचार्य के पास जाकर बोला-"आचार्य! किसी भी उपाय से आप युधिष्ठिर को जीवित ही पकड़ कर हमारे हवाले कर सकें तो बड़ा ही उत्तम हो!"

दुर्योधन का उद्देश्य तो कुछ और ही था। दुर्योधन को यह भी पता चल गया था कि युधिष्ठिर का वध करने से कोई लाभ नहीं हो सकता। इसके विपरीत यदि युधिष्ठिर को जीवित पकड़ लिया जाए, तो युद्ध भी शीघ्र ही बंद हो जाएगा और जीत भी कौरवों की होगी। थोड़ा राज्य युधिष्ठिर को देने का बहाना करना होगा, सो वह कर देंगे और बाद में फिर जुआ खेलकर सहज ही में उसे वापस छीन भी लेंगे। इन्हीं सब विचारों से प्रेरित होकर दुर्योधन ने द्रोणाचार्य से युधिष्ठिर को जीवित पकड़ लाने का अनुरोध किया था। लेकिन द्रोण को जब दुर्योधन के असली उद्देश्य का पता लगा, तो वह बहुत उदास हो गए। इससे उनके मन में दुर्योधन के प्रति तीव्र घृणा उत्पन्न हो गई। मन-ही-मन यह सोचकर उन्होंने संतोष कर लिया कि युधिष्ठिर के प्राण न लेने का कोई-न-कोई बहाना तो मिल ही गया।

पांडव तो द्रोणाचार्य की अद्वितीय शूरता एवं शस्त्र विद्या के अनुपम ज्ञान से भली-भाँति परिचित ही थे। अत: जब सुना कि द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर को पकड़ने का निश्चय ही नहीं किया है, बल्कि प्रतिज्ञा भी की है, तो वे भी भयभीत हो गए। सबको यही चिंता रहने लगी कि किसी भी तरह युधिष्ठिर की रक्षा का पूरा-पूरा प्रबंध किया जाए। द्रोण ने अपने सारथी को आज्ञा दी कि रथ को उस ओर ले चलो, जिधर युधिष्ठिर युद्ध कर रहे हों। युधिष्ठिर सँभले, इससे पहले ही द्रोणाचार्य वेग से उनके निकट जा पहुँचे। धृष्टद्युम्न ने हज़ार चेष्टा की, परंतु वह द्रोण को नहीं रोक सका।

'युधिष्ठिर पकड़े गए!' 'युधिष्ठिर पकड़े गए!' की चिल्लाहट से सारा कुरुक्षेत्र गूँज उठा। इतने ही में एकाएक न जाने कहाँ से अर्जुन उधर आ पहुँचा और अर्जुन के गांडीव से बाणों की ऐसी अविरल बौछार छूट रही थी कि कोई देख ही नहीं पाता था कि कब बाण धनुष पर चढ़ते और कब छूटते थे। कुरुक्षेत्र का आकाश बाणों से भर गया। इस कारण सारे मैदान में अंधकार-सा छा गया।

अर्जुन के हमले के कारण द्रोणाचार्य को पीछे हटना पड़ा। युधिष्ठिर को जीवित पकड़ने का उनका प्रयत्न विफल हो गया और संध्या

होते-होते उस दिन का युद्ध भी बंद हो गया। कौरव-सेना में भय छा गया। पांडव-सेना के वीर शान से अपने-अपने शिविर को लौट चले। सैन्य-समूह के पीछे-पीछे चलते हुए कृष्ण और अर्जुन अपने शिविर में जा पहुँचे। इस प्रकार ग्यारहवें दिन का युद्ध समाप्त हुआ।

33 बारहवाँ दिन

0751CH33

युधिष्ठिर को जीवित पकड़ने की चेष्टा के विफल हो जाने पर अंत में यही निश्चय किया गया कि अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारा जाए और लड़ते-लड़ते उसे युधिष्ठिर से दूर हटाकर ले जाया जाए। युद्ध का बारहवाँ दिन था। बहुत ही भयानक लड़ाई हो रही थी। आचार्य द्रोण ने युधिष्ठिर को जीवित पकड़ने की कई बार चेष्टा की पर असफल रहे। 'भगदत्त के हाथी ने भीमसेन को मार दिया!' यह शोर सुनकर युधिष्ठिर ने भी विश्वास कर लिया कि भीमसेन सचमुच ही मारा गया होगा। यह सोचकर उन्होंने अपने वीरों को आज्ञा दी कि वे भगदत्त पर हमला करें। इधर युधिष्ठिर द्वारा भेजी गई कुमुक आ पहुँची थी और वृद्ध भगदत्त को चारों तरफ़ से पांडव-वीरों ने घेर लिया था। उधर दूर अर्जुन संशप्तकों से लड़ रहा था।

अर्जुन के पहुँचते ही पांडवों की सेना में नया उत्साह आ गया। हाथी पर सवार भगदत्त ने अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों पर ही बाण बरसाने शुरू किए। भगदत्त ने एक तोमर अर्जुन पर चलाया। तोमर अर्जुन के मुकुट पर जा लगा। इससे अर्जुन को बड़ा क्रोध आया। उसने अपना मुकुट सँभालकर रख लिया और बोला—"भगदत्त अब इस संसार को अंतिम बार अच्छी तरह से देख लो।" यह कहते-कहते अर्जुन ने अपना गांडीव तान लिया। अर्जुन द्वारा छोड़े गए बाणों से भगदत्त का धनुष टूट गया। तरकश का भी यही हाल हुआ। अर्जुन ने भगदत्त के मर्म-स्थानों पर भी बाण चलाकर उन्हें छेद डाला। इसके बाद अर्जुन के तेज़ बाणों से भगदत्त की आँखों के ऊपर बँधी हुई रेशम की पट्टी कट गई, जो उसकी आँखों के ऊपर लटक आनेवाली चमड़ी को ऊपर उठाए रखती थी। इससे भगदत्त की आँखें बंद हो गईं। उसे कुछ भी सूझना बंद हो गया। वह अँधेरे में मानो विलीन-सा हो गया। थोड़ी ही देर बाद एक और पैने बाण ने उसकी छाती भेद डाली। भगदत्त को गिरते हुए देखकर कौरवों की सेना मारे भय के तितर-बितर होने लगी। किंतु शकुनि के दो भाई वृषक और अचक तब भी विचलित न हुए और जमकर लड़ते रहे। उन दोनों वीरों ने अर्जुन पर आगे और पीछे से बाणों की वर्षा करके खूब परेशान किया। अर्जुन ने थोड़ी देर बाद उन दोनों के रथों को तहस-नहस कर दिया और उनकी सेनाओं पर भी भयानक बाण-वर्षा की। सिंह-शिशुओं के समान वे दोनों भाई अर्जुन के बाणों से घायल होकर गिर पड़े और मृत्यु को प्राप्त हुए।

अपने अनुपम वीर भाइयों के मारे जाने पर शकुनि के क्रोध और क्षोभ की सीमा न रही। उसने युद्ध शुरू कर दिया और उन सब उपायों से काम लिया, जिनमें उसे कुशलता प्राप्त थी। परंतु अर्जुन ने उसके एक-एक अस्त्र को अपने जवाबी अस्त्रों से काट डाला। अंत में अर्जुन के बाणों से शकुनि ऐसा आहत हुआ कि उसे युद्ध-क्षेत्र से हट जाना पड़ा।

इसके बाद तो पांडवों की सेना द्रोणाचार्य की सेना पर टूट पड़ी। असंख्य वीर खेत रहे। खून की नदियाँ-सी बहने लगीं। थोड़ी देर बाद सूर्य अस्त हुआ। अपनी सेना का यह हाल देखकर द्रोणाचार्य ने लड़ाई बंद कर दी। दोनों पक्षों की सेनाएँ अपने-अपने डेरों को चल दीं और इस प्रकार बारहवें दिन का युद्ध समाप्त हुआ।

0751CH34

34 अभिमन्यु

तेरहवें दिन भी संशप्तकों (त्रिगर्तो) ने अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारा। अर्जुन भी चुनौती स्वीकार करके उनके साथ लड़ता हुआ दक्षिण दिशा की ओर चला। नियत स्थान पर पहुँचने पर अर्जुन और संशप्तकों के बीच घोर संग्राम छिड़ गया। अर्जुन के दक्षिण की ओर चले जाने के बाद द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह की रचना की और युधिष्ठिर पर धावा बोल दिया। युधिष्ठिर की ओर से भीम, सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, कुंतिभोज, उत्तमौजा, विराटराज, वीर कैकेय आदि कितने ही सुविख्यात महारथियों ने द्रोणाचार्य के आक्रमण की बाढ़ को रोकने की जी-तोड़ कोशिश की। फिर भी द्रोण का वेग उनके रोके नहीं रुका। यह देखकर सभी महारथी चिंता में पड़ गए। सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु अभी बालक ही था। फिर भी अपनी रणकुशलता और शूरता के लिए वह इतना अधिक प्रसिद्ध हो चुका था कि लोग उसको कृष्ण एवं अर्जुन की समता करनेवाला समझते थे।

युधिष्ठिर ने इस वीर बालक को बुलाकर कहा-"बेटा! द्रोण के रचे हुए चक्रव्यूह को तोड़ना हमारे और किसी वीर से हो नहीं सकता। अकेले तुम्हीं ऐसे हो, जिसके लिए द्रोण के बनाए इस व्यूह को तोड़ना संभव है। तुम द्रोण की सेना पर आक्रमण करने को तैयार हो?"

यह सुनकर अभिमन्यु बोला-"महाराज, इस चक्रव्यूह में प्रवेश करना तो मुझे आता है, पर प्रवेश करने के बाद कहीं कोई संकट आ गया तो व्यूह से बाहर निकलना मुझे याद नहीं है।" युधिष्ठिर ने कहा-"बेटा! व्यूह को तोड़कर एक बार तुम भीतर प्रवेश कर लो; फिर तो जिधर से तुम आगे बढ़ोगे, उधर से ही हम तुम्हारे पीछे-पीछे चले आएँगे और तुम्हारी मदद को तैयार रहेंगे।"

युधिष्ठिर की बातों का समर्थन करते हुए भीमसेन ने कहा-"तुम्हारे ठीक पीछे-पीछे मैं चलूँगा। धृष्टद्युम्न, सात्यकि आदि वीर भी अपनी-अपनी सेनाओं के साथ तुम्हारा अनुकरण

करेंगे। एक बार तुमने व्यूह को तोड़ दिया, तो फिर यह निश्चित समझना कि हम सब कौरव-सेना को तहस-नहस कर डालेंगे।"

यह सब सुनकर बालक अभिमन्यु को अपने मामा श्रीकृष्ण और पिता अर्जुन की वीरता का स्मरण हो आया। बड़े उत्साह के साथ वह बोला—"मैं अपनी वीरता और पराक्रम से मामा श्रीकृष्ण और पिता जी को अवश्य प्रसन्न करूँगा।"

"सुमित्र! वह देखो! द्रोणाचार्य के रथ की ध्वजा। उसी ओर रथ चलाओ, जल्दी करो।" अपने सारथी को उत्साहित करते हुए अभिमन्यु ने कहा और सारथी ने भी उसी ओर रथ चलाया।

अभिमन्यु की आज्ञा मानकर सारथी ने उधर रथ बढ़ा दिया। कौरव-सेना में हलचल मच गई—"अरे अभिमन्यु आया और उसके पीछे-पीछे पांडव वीर भी चले आ रहे हैं।"

द्रोणाचार्य के देखते-देखते उनका बनाया हुआ व्यूह टूट गया और अभिमन्यु व्यूह के अंदर दाखिल हो गया। कौरव-वीर एक-एक करके अभिमन्यु का सामना करने आते गए और इस प्रकार कूच करते गए कि जैसे आग में पड़कर पतंगे भस्म हो जाते हैं। जो भी सामने आया, उस बालवीर के बाणों की मार से मारा गया। जैसा कि पहले तय हुआ था, पांडवों की सेना अभिमन्यु के पीछे-पीछे चली और जहाँ से व्यूह तोड़कर अभिमन्यु अंदर घुसा था, वहीं से व्यूह के अंदर प्रवेश करने लगी। यह देखकर सिंधु देश का पराक्रमी राजा जयद्रथ, जो धृतराष्ट्र का दामाद था, अपनी सेना को लेकर पांडव-सेना पर टूट पड़ा। जयद्रथ ने ऐसी कुशलता और बहादुरी से ठीक समय पर व्यूह की टूटी हुई किलेबंदी को फिर से पूरा करके मज़बूत बना दिया कि जिससे पांडव बाहर ही रह गए। अभिमन्यु व्यूह के अंदर अकेला रह गया, परंतु अकेले अभिमन्यु ने व्यूह के अंदर ही कौरवों की उस विशाल सेना को तहस-नहस करना शुरू कर दिया। जो भी उसके सामने आता, खत्म हो जाता था। दुर्योधन का पुत्र लक्ष्मण अभी बालक था, परंतु उसमें वीरता की आभा फूट रही थी। उसको भय छू तक नहीं गया था। अभिमन्यु की बाण-वर्षा से व्याकुल होकर जब सभी योद्धा पीछे हटने लगे, तो वीर लक्ष्मण अकेला जाकर अभिमन्यु से भिड़ गया। वह वीर बालक भाले की चोट से तत्काल मृत होकर गिर पड़ा। यह देखकर कौरव-सेना आर्त स्वर में हाहाकार कर उठी।

"अभिमन्यु का इसी क्षण वध करो।" दुर्योधन ने चिल्लाकर कहा और द्रोण, अश्वत्थामा, वृहदबल, कृतवर्मा आदि छह महारथियों ने अभिमन्यु को चारों ओर से घेर लिया।

द्रोण ने कर्ण के पास आकर कहा—"इसका कवच भेदा नहीं जा सकता। ठीक से निशाना साधकर इसके रथ के घोड़ों की रास काट डालो और पीछे की ओर से इस पर अस्त्र चलाओ।"

कर्ण ने यही किया। पीछे की ओर से बाण चलाए गए। अभिमन्यु का धनुष कट गया। घोड़े और सारथी मारे गए। वह रथविहीन हो गया। तुरंत ही अभिमन्यु ने टूटे हुए रथ का पहिया हाथ में उठा लिया और उसे घुमाने लगा। इस समय अभिमन्यु भयानक युद्ध कर रहा था। यह देखकर सारी सेना एक साथ उस पर टूट पड़ी। उसके हाथ का पहिया चूर-चूर हो गया। इसी बीच दु:शासन का पुत्र गदा लेकर अभिमन्यु पर

झपटा। इस पर अभिमन्यु ने भी पहिया फेंककर गदा उठा ली और दोनों आपस में भिड़ गए। दोनों में घोर युद्ध छिड़ गया। एक-दूसरे पर गदा का भीषण वार करते हुए दोनों ही राजकुमार आहत होकर गिर पड़े। दोनों ही हड़बड़ाकर उठने लगे। दु:शासन का पुत्र ज़रा पहले उठ खड़ा हुआ। अभिमन्यु अभी उठ ही रहा था कि दु:शासन के पुत्र ने उसके सिर पर ज़ोर से गदा-प्रहार किया। यों भी अभिमन्यु अब कइयों से अकेला लड़ते हुए घायल हो चुका था और थककर चूर हो रहा था। गदा की मार पड़ते ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गए।

संशप्तकों (त्रिगर्तों) का संहार करने के बाद युद्ध समाप्त करके अर्जुन और श्री कृष्ण अपने शिविर को लौट रहे थे। अर्जुन श्रीकृष्ण से बोला-"जनार्दन! मेरा मन घबराया हुआ है। मैं भ्रांत-सा हो रहा हूँ? सब भाई कुशल से तो होंगे? आज अभिमन्यु अपने भाइयों के साथ हँसता हुआ मेरा स्वागत करने क्यों नहीं दौड़ा आ रहा है?" ऐसी ही बातें करते हुए दोनों शिविर के अंदर पहुँचे।

किसी के कुछ न कहने पर भी अर्जुन ने परिस्थिति देखकर अपने आप ही सब बातें ताड़ लीं और तब उससे रहा नहीं गया। सब कुछ जान जाने पर वह बुरी तरह से बिलखने लगा।

श्रीकृष्ण की बातें सुनकर अर्जुन कुछ शांत हुआ। उसने अपने इस वीर पुत्र की मृत्यु का सारा हाल जानना चाहा। उसके पूछने पर युधिष्ठिर बोले-"मैंने ही अभिमन्यु से कहा था कि चक्रव्यूह को तोड़कर भीतर प्रवेश करने का हमारे लिए रास्ता बना दो, तो हम सब तुम्हारा अनुकरण करते हुए व्यूह में प्रवेश कर लेंगे। मेरी बात मानकर वीर अभिमन्यु इस अभेद्य व्यूह को तोड़कर अंदर घुस गया। हम भी उसी के पीछे-पीछे चले। हम अंदर घुसने ही वाले थे कि पापी जयद्रथ ने हमें रोक लिया। उसने बड़ी चतुरता से टूटे हुए व्यूह को फिर से ठीक कर दिया। हमारे लाख प्रयत्न करने पर भी जयद्रथ ने हमें प्रवेश करने नहीं दिया। इसके बाद हम तो बाहर रहे और अंदर कई महारथियों ने एक साथ मिलकर उस अकेले बालक को घेर लिया और मार डाला।"

युधिष्ठिर की बात पूरी भी न हो पाई थी कि अर्जुन आर्त स्वर में "हा बेटा!" कहकर मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। चेत आने पर वह उठा और दृढ़तापूर्वक बोला-"जिसके कारण मेरे प्रिय पुत्र की मृत्यु हुई है, उस जयद्रथ का मैं कल सूर्यास्त होने से पहले वध करके रहूँगा। यह मेरी प्रतिज्ञा है।" यह कहकर अर्जुन ने गांडीव पर ज़ोर से टंकार की।

सिंधु देश के सुप्रसिद्ध राजा वृद्धक्षत्र के पुत्र जयद्रथ को जब अर्जुन की प्रतिज्ञा का हाल मालूम हुआ, तो वह दुर्योधन के पास गया और बोला-"मुझे युद्ध की चाह नहीं है। मैं अपने देश चला जाना चाहता हूँ।" यह सुनकर दुर्योधन ने उसको धीरज बँधाया और बोला-"सैंधव! आप भय न करें। मेरी सारी सेना आपकी रक्षा करने के लिए नियुक्त की जाएगी, आप नि:शंक रहें।" दुर्योधन के इस प्रकार आग्रह करने पर जयद्रथ ने उसकी बात मान ली।

सवेरा हुआ। शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ आचार्य द्रोण ने सेना की व्यवस्था करने में ध्यान दिया। युद्ध के मैदान से बारह मील की दूरी पर जयद्रथ को अपनी सेना एवं रक्षकों के साथ रखा

गया। उसकी रक्षा के लिए भूरिश्रवा, कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य, वृषसेन आदि महारथी अपनी सेनाओं के साथ सुसज्जित होकर तैयार खड़े थे। अर्जुन पहले भोजों की सेना पर टूट पड़ा। कृतवर्मा और सुदक्षिण पर एक ही साथ हमला करके व उनको परास्त करके वह श्रुतायुध पर टूट पड़ा। ज़ोरों की लड़ाई छिड़ गई। श्रुतायुध के घोड़े मारे गए। इस पर उसने गदा उठाकर श्रीकृष्ण पर प्रहार किया। परंतु निःशस्त्र और युद्ध में शरीक न होनेवाले श्रीकृष्ण पर फेंककर मारी गई गदा श्रुतायुध को ही जा लगी और श्रुतायुध मृत होकर गिर पड़ा। इस पर कांभोजराज सुदक्षिण ने अर्जुन पर ज़ोरों का हमला कर दिया। किंतु अर्जुन ने उस पर बाणों की ऐसी वर्षा की कि उसका रथ चूर-चूर हो गया। उसके कवच के टुकडे-टुकड़े हो गए और छाती पर बाण लगने से कांभोजराज हाथ फैलाता हुआ धड़ाम से गिर पड़ा।

इस प्रकार अपना गांडीव हाथ में लिए हुए असंख्य वीरों का काम तमाम करता हुआ अर्जुन आगे बढ़ता गया और कौरव-सेना के समुद्र को चीरता हुआ अंत में उस जगह पर जा पहुँचा, जहाँ जयद्रथ अपनी सेना से घिरा हुआ खड़ा था। अर्जुन का रथ जयद्रथ की ओर जाते हुए देखकर दुर्योधन चिंतित और दुखी हुआ।

जयद्रथ की रक्षा के लिए नियुक्त वीरों ने जब यह सुना, तो उनके दिल एकबारगी दहल उठे और भूरिश्रवा, कर्ण, वृषसेन, शल्य, अश्वत्थामा, जयद्रथ आदि आठों महारथी अर्जुन का मुकाबला करने को तत्पर हो उठे।

0751CH35

35 युधिष्ठिर की चिंता और कामना

दुर्योधन को अर्जुन का पीछा करते देखकर पांडव-सेना ने शत्रुओं पर और भी ज़ोर का हमला कर दिया। धृष्टद्युम्न ने सोचा कि जयद्रथ की रक्षा करने हेतु यदि द्रोण भी चले गए, तो अनर्थ हो जाएगा। इस कारण द्रोणाचार्य को रोके रखने के इरादे से उसने द्रोण पर लगातार आक्रमण जारी रखा। धृष्टद्युम्न की इस चाल के कारण कौरव-सेना तीन हिस्सों में बँटकर कमज़ोर पड़ गई।

इतने में धृष्टद्युम्न उछलकर द्रोणाचार्य के रथ पर जा चढ़ा और विक्षिप्त-सा होकर द्रोण पर वार करने लगा। धृष्टद्युम्न का हमला जारी रहा। अंत में द्रोण ने क्रोध में आकर एक अत्यधिक पैना बाण चलाया। वह पांचालकुमार के प्राण ही ले लेता, यदि सात्यकि का बाण उसे बीच में ही पुनः न काट देता। अचानक सात्यकि के बाण रोक लेने पर द्रोण का ध्यान उसकी ओर चला गया। इसी बीच पांचाल-सेना के रथसवार धृष्टद्युम्न को वहाँ से हटा ले गए। परंतु सात्यकि भी कोई मामूली वीर नहीं था। पांडव-सेना के सबसे चतुर योद्धाओं में उसका स्थान था। जब उसने द्रोणाचार्य को अपनी ओर झपटते देखा, तो वह खुद भी उनकी ओर झपटा। इस तरह बहुत देर तक दोनों वीर लड़ते रहे।

इसी बीच युधिष्ठिर को पता चला कि सात्यकि पर संकट आया हुआ है, तो वह अपने आसपास के वीरों से बोले—"कुशल योद्धा, नरोत्तम और सच्चे वीर सात्यकि आचार्य द्रोण के बाणों से बहुत ही पीड़ित हो रहे हैं। चलो, हम लोग उधर चलकर उस वीर महारथी की सहायता करें।"

उसके बाद वह धृष्टद्युम्न से बोले—"द्रुपद-कुमार! आपको अभी जाकर द्रोणाचार्य पर आक्रमण करना चाहिए, नहीं तो डर है कि कहीं आचार्य के हाथों सात्यकि का वध न हो जाए। युधिष्ठिर ने द्रोण पर हमला करने के लिए धृष्टद्युम्न के साथ एक बड़ी सेना भेज दी। समय पर कुमुक के पहुँच जाने पर भी बड़े परिश्रम के बाद ही सात्यकि को द्रोण के फँदे से छुड़ाया जा सका।

इसी समय श्रीकृष्ण के पांचजन्य की ध्वनि सुनाई दी। वह आवाज़ सुनकर युधिष्ठिर चिंतित हो गए। "इस घड़ी अर्जुन की सहायता को चले जाओ", इतना कहते-कहते युधिष्ठिर बहुत ही अधीर हो उठे। युधिष्ठिर के इस प्रकार आग्रह करने पर सात्यकि ने बड़ी नम्रता से कहा—"युधिष्ठिर! द्रोण की प्रतिज्ञा तो आप जानते ही हैं। अतः आपकी रक्षा का भार हमारे ऊपर है। महाराज, वासुदेव और अर्जुन मुझे यह आदेश दे गए हैं और मुझ पर भरोसा करके यह भारी ज़िम्मेदारी डाल गए हैं। मैं उनकी बात को कैसे टालूँ? आप अर्जुन की ज़रा भी चिंता न करें। अर्जुन को कोई नहीं जीत सकता।"

उधर जैसे ही सात्यकि युधिष्ठिर को छोड़कर अर्जुन की ओर चला, वैसे ही द्रोणाचार्य ने पांडव-सेना पर हमले करने शुरू कर दिए। पांडव-सेना की पंक्तियाँ कई जगह से टूट गईं और उन्हें पीछे हटना पड़ गया। यह देखकर युधिष्ठिर बड़े चिंतित हो उठे और बोले—"भीम, मेरा कहा मानो तो तुम भी अर्जुन के पास चले जाओ और सात्यकि तथा अर्जुन का हालचाल मालूम करो। इसके लिए जो कुछ करना ज़रूरी हो, वह करके वापस आकर मुझे सूचना दो। मेरा कहना मानकर ही सात्यकि अर्जुन की सहायता को कौरव-सेना से युद्ध करता हुआ गया है। यदि तुम उनको कुशलपूर्वक पाओ तो सिंहनाद करना। मैं समझ लूँगा कि सब कुशल है।"

भीमसेन ने युधिष्ठिर की बात का प्रतिवाद नहीं किया और वह धृष्टद्युम्न से बोला—"आचार्य द्रोण के इरादे से तो आप परिचित हैं ही। किसी-न-किसी तरह भ्राता युधिष्ठिर को जीवित पकड़ने का उनका प्रण है। राजा की रक्षा करना ही हमारा प्रथम कर्तव्य है। जब वह स्वयं मुझे जाने की आज्ञा दे रहे हैं, तो उसका भी पालन करना मेरा धर्म हो जाता है। इस कारण भ्राता युधिष्ठिर को आपके ही भरोसे पर छोड़कर जा रहा हूँ। इनकी भली-भाँति रक्षा कीजिएगा।"

धृष्टद्युम्न ने कहा—"तुम किसी प्रकार की चिंता न करो और निश्चिंत होकर जाओ। विश्वास रखो कि द्रोण मेरा वध किए बिना युधिष्ठिर को नहीं पकड़ सकेंगे।" आचार्य द्रोण के जन्म के बैरी धृष्टद्युम्न के इस प्रकार विश्वास दिलाने पर भीम निश्चिंत होकर तेज़ी से अर्जुन की तरफ़ चल दिया।

जितने भी सैन्यदल मुकाबला करने आए, उन्हें मारता-गिराता हुआ भीम अंत में उस स्थान पर पहुँच गया, जहाँ अर्जुन जयद्रथ की सेना से लड़ रहा था।

अर्जुन को सुरक्षित देखते ही भीमसेन ने सिंहनाद किया। भीम का सिंहनाद सुनकर श्रीकृष्ण और अर्जुन आनंद के मारे उछल पड़े और उन्होंने भी ज़ोरों से सिंहनाद किया। इन सिंहनादों को सुनकर युधिष्ठिर बहुत ही प्रसन्न हुए। उनके मन से शोक के बादल हट गए। उन्होंने अर्जुन को मन-ही-मन आशीर्वाद दिया। वह सोचने लगे—अभी सूरज डूबने से पहले अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर लेगा और जयद्रथ का वध करके लौट आएगा। हो सकता है, जयद्रथ के वध के बाद दुर्योधन शायद संधि कर ले। इधर युधिष्ठिर मन-ही-मन शांति स्थापना की कामना कर रहे थे और उधर मोर्चे पर जहाँ भीम, सात्यकि और अर्जुन थे, वहाँ घोर संग्राम हो रहा था।

थोड़े ही समय में जिस स्थान पर अर्जुन और जयद्रथ का युद्ध हो रहा था, दुर्योधन भी वहाँ आ पहुँचा मगर थोड़ी ही देर में बुरी तरह हारकर मैदान छोड़कर भाग खड़ा हुआ। इस भाँति उस रोज़ कई मोर्चों पर ज़ोरों से युद्ध हो रहा था।

द्रोण ने कहा—"बेटा दुर्योधन, तुम्हें हिम्मत नहीं हारनी चाहिए। तुम जयद्रथ की सहायता के लिए जाओ और वहाँ जो कुछ करना आवश्यक हो, वह करो।" आचार्य के कहने-सुनने पर दुर्योधन कुछ सेना लेकर फिर से लड़ाई के उस मोर्चे पर चला गया, जहाँ अर्जुन और जयद्रथ में ज़ोरों की लड़ाई हो रही थी। उस दिन भीम और कर्ण में जो युद्ध हुआ, वह एक रोमांचकारी घटना के रूप में वर्णित है। भीमसेन उत्तेजना और उग्रता की प्रतिमूर्ति-सा दिखाई दे रहा था। कर्ण जो कुछ करता, धीरज और व्यवस्था के साथ शांतभाव से करता, किंतु भीम को तो थोड़ा-सा भी अपमान असह्य हो जाता था।

दोनों ही बड़े वीर थे। वे एक-दूसरे पर झपटकर आघात करने लगे। भीमसेन को उस समय पिछले घोर अपमानों, यातनाओं और मुसीबतों की याद हो आई, जो उसे, उसके भाइयों और द्रौपदी को पहुँचाई गई थीं। प्राणों का मोह छोड़कर वह लड़ने लगा। उस समय भीमसेन का घावों से भरा हुआ शरीर धधकती हुई आग-सा प्रतीत हो रहा था।

कर्ण और भीम के युद्ध में इस बार भीमसेन के रथ के घोड़े मारे गए। सारथी भी कटकर गिर पड़ा। रथ टूट-फूट गया और धनुष भी कट गया। भीम ने ढाल-तलवार ले ली और जान झोंककर लड़ने लगा। पलक झपकते ही कर्ण ने उसकी ढाल के भी टुकड़े-टुकड़े कर दिए। जब ढाल भी न रही तो कर्ण ने भीम को खूब परेशान किया। इससे भीम बहुत ही पीड़ित हुआ। उसे असीम क्रोध आया। वह उछलकर कर्ण के रथ पर जा कूदा। कर्ण ने रथ के ध्वज-स्तंभ की आड़ लेकर भीमसेन की झपट से अपने को बचा लिया। भीम नीचे ज़मीन पर कूद पड़ा और विलक्षण युद्ध करने लगा। मैदान में जो रथ के पहिए, घोड़े, हाथी आदि पड़े हुए थे, उन्हीं को उठा-उठाकर वह कर्ण पर फेंकता गया, जिससे उसे क्षणभर भी आराम न मिल पाया। उस समय कर्ण चाहता, तो वह भीम को आसानी से मार सकता था, पर निहत्थे भीम को उसने मारना नहीं चाहा। माता कुंती को दिया हुआ वचन भी उसे याद था कि वह अर्जुन के अतिरिक्त और किसी को युद्ध में न मारेगा।

36 भूरिश्रवा, जयद्रथ और आचार्य द्रोण का अंत

0751CH36

उधर अर्जुन सिंधुराज जयद्रथ के साथ युद्ध कर रहा था और उसका वध करने के मौके की तलाश में था। इतने में भूरिश्रवा ने सात्यकि को ऊपर उठाया और ज़मीन पर ज़ोर से दे पटका। कौरव-सेना ज़ोरों से कोलाहल कर उठी—"सात्यकि मारा गया।"

अर्जुन ने देखा कि मैदान में मृत-से पड़े सात्यकि को भूरिश्रवा घसीट रहा है। यह देखकर अर्जुन भारी असमंजस में पड़ गया। उसे कुछ नहीं सूझा कि क्या किया जाए। वह श्रीकृष्ण से बोला—"कृष्ण, भूरिश्रवा मुझसे लड़ नहीं रहा है। दूसरे के साथ लड़नेवाले पर कैसे बाण चलाऊँ?"

अर्जुन इस प्रकार श्रीकृष्ण से बातें कर ही रहा था कि इतने में जयद्रथ द्वारा छोड़े गए बाणों के समूह आकाश में छा गए। इस पर अर्जुन ने बातें करते-करते ही जयद्रथ पर बाणों की बौछार जारी रखी।

ज्योंही अर्जुन ने सात्यकि की ओर मुड़कर देखा तो पाया कि सात्यकि ज़मीन पर पड़ा हुआ था और भूरिश्रवा उसके शरीर को एक पाँव से दबाकर और दाहिने हाथ में तलवार लेकर उस पर वार करने को उद्यत ही था। यह देखकर अर्जुन से रहा न गया। उसने उसी क्षण भूरिश्रवा पर तानकर बाण चलाया। बाण लगते ही भूरिश्रवा का दाहिना हाथ कटकर तलवार समेत दूर ज़मीन पर जा गिरा।

अपना हाथ कट जाने पर जब भूरिश्रवा ने कृष्ण की निंदा की, तो अर्जुन बोला—"वृद्ध भूरिश्रवा! तुमने मेरे प्रिय मित्र सात्यकि का वध करने की कोशिश की है और वह भी उस समय जबकि वह घायल और अचेत-सा होकर ज़मीन पर निःशस्त्र पड़ा हुआ था। उस अवस्था में तुमने उसे तलवार से मारना चाहा। जिसके हथियार टूट चुके थे, कवच नष्ट हो चुका था और जो इतना थका हुआ था कि जिसके लिए खड़ा रहना भी दूभर था, ऐसे मेरे कोमल बालक अभिमन्यु का वध होने पर तुम सभी लोगों ने विजयोत्सव मनाया था। तुम्हीं बताओ कि ऐसा करना किस धर्म के अनुसार उचित था?"

अर्जुन के इस प्रकार मुँहतोड़ जवाब देने पर भूरिश्रवा युद्ध के मैदान में शरों को फैलाकर और आसन जमाकर बैठ गया। उसने वहीं आमरण अनशन शुरू कर दिया। यह सब देखकर अर्जुन बोला—"वीरो! तुम सब मेरी प्रतिज्ञा जानते हो। मेरे बाणों की पहुँच तक अपने किसी भी मित्र या साथी का शत्रु के हाथों वध न होने देने का प्रण मैंने कर रखा है। इसलिए सात्यकि की रक्षा करना मेरा धर्म था।" अर्जुन की ये बातें सुनकर भूरिश्रवा ने भी शांति से सिर नवाया और ज़मीन पर टेक दिया। इन बातों में कोई दो घड़ी का समय बीत गया था। सब लोगों के मना करते हुए भी सात्यकि ने भूरिश्रवा का सिर धड़ से अलग कर दिया। सात्यकि के कार्य को सबने निकृष्ट कहकर धिक्कारा। लड़ाई के मैदान में जिस ढंग से

भूरिश्रवा का वध हुआ था, उसे किसी ने भी उचित नहीं माना।

कौरव-सेना को तितर-बितर करता हुआ अर्जुन जयद्रथ के पास आखिर पहुँच ही गया, परंतु जयद्रथ भी कोई साधारण वीर नहीं था। वह सुविख्यात योद्धा था। वह डटकर लड़ने लगा। उसे हराना अर्जुन के लिए भी सुगम न था। बड़ी देर तक युद्ध होता रहा। दोनों पक्षों के वीर सूर्य की ओर बार-बार देखने लगे। धीरे-धीरे पश्चिम में लालिमा छाने लगी और सूर्यास्त का समय भी नज़दीक आने लगा, परंतु जयद्रथ और अर्जुन का युद्ध समाप्त होने के कोई लक्षण नज़र नहीं आते थे।

यह देखकर दुर्योधन के मन में आनंद की लहर उठने लगी। उसने सोचा कि अब ज़रा सी देर और है। जयद्रथ तो बच ही गया और अर्जुन की प्रतिज्ञा विफल हुई-सी है। जयद्रथ ने भी पश्चिम की ओर देखते हुए मन में कहा—"चलो, प्राण बचे!"

इसी बीच श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—"अर्जुन! जयद्रथ सूर्य की तरफ़ देखने में लगा है और मन में समझ रहा है कि सूर्य डूब गया। परंतु अभी तो सूर्य डूबा नहीं है। अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने का तुम्हारे लिए यही अवसर है।"

श्रीकृष्ण के ये वचन अर्जुन के कान में पड़े ही थे कि अर्जुन के गांडीव से एक तेज़ बाण छूटा और जयद्रथ के सिर को उड़ा ले गया। श्रीकृष्ण ने समय पर ही एक चेतावनी अर्जुन को दे दी थी कि जयद्रथ के सिर को ज़मीन पर नहीं गिरने देना है। अर्जुन ने ऐसा ही किया। जयद्रथ के पिता राजा वृद्धक्षत्र अपने आश्रम में बैठे संध्या वंदना कर रहे थे कि इतने में जयद्रथ का सिर ध्यानमग्न राजा की गोद में जा गिरा। ध्यान समाप्त होने पर जब वृद्धक्षत्र की आँखें खुलीं और वह उठे, तो जयद्रथ का सिर उनकी गोद से ज़मीन पर गिर पड़ा और उसी क्षण बूढ़े वृद्धक्षत्र के सिर के भी सौ टुकड़े हो गए।

जब युधिष्ठिर ने जान लिया कि अर्जुन के हाथों जयद्रथ का वध हो गया है, तो उन सबके आनंद की सीमा न रही। इसके बाद तो युधिष्ठिर दूने उत्साह के साथ सारी पांडव-सेना को लेकर आचार्य द्रोण पर टूट पड़े। चौदहवें दिन का युद्ध केवल सूर्यास्त तक ही नहीं हुआ, बल्कि रात को भी होता रहा। घटोत्कच भीमसेन का हिडिंबा से उत्पन्न पुत्र था। कर्ण और घटोत्कच में उस रात बड़ा भयानक युद्ध हुआ। घटोत्कच ने कर्ण को भी इतनी पीड़ा पहुँचाई थी कि वह आपे में न रहा और इंद्र की दी हुई शक्ति का, जिसे उसने अर्जुन का वध करने के उद्देश्य से यत्नपूर्वक सुरक्षित रखा था, घटोत्कच पर प्रयोग कर दिया। इससे अर्जुन का संकट तो टल गया, परंतु भीमसेन का प्रिय एवं वीर पुत्र घटोत्कच मारा गया। पांडवों के दुख की सीमा न रही। इतने पर भी युद्ध बंद नहीं हुआ। द्रोणाचार्य के धनुष से बाणों की तीव्र बौछार से पांडव-सेना के असंख्य वीर कट-कटकर गिरते जाते थे।

यह देखकर श्रीकृष्ण अर्जुन से बोले—"अर्जुन! कुछ कुचक्र रचकर ही इनको परास्त करना होगा। आज अगर परास्त न हुए तो ये हमारा सर्वनाश कर देंगे। इसलिए किसी को आचार्य के पास जाकर यह खबर पहुँचानी चाहिए कि अश्वत्थामा मारा गया।" युधिष्ठिर ने काफ़ी सोच-विचार के बाद कहा कि यह पाप मैं अपने ही ऊपर लेता हूँ। इस व्यवस्था के अनुसार भीम

ने गदा-प्रहार से अश्वत्थामा नाम के एक भारी लड़ाके हाथी को मार डाला। फिर द्रोण की सेना के पास जाकर ज़ोर से चिल्लाने लगा—"मैंने अश्वत्थामा को मार डाला है।"

उधर युद्ध करते हुए द्रोणाचार्य ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करना ही चाहते थे कि उन्होंने सुना कि उनका पुत्र अश्वत्थामा मारा गया। वह विचलित हो गए। साथ ही उन्हें इस बात की सच्चाई पर भी शक हुआ। उन्होंने युधिष्ठिर से पूछा। आचार्य द्रोण को विश्वास था कि युधिष्ठिर झूठ नहीं बोलेंगे।

युधिष्ठिर असत्य बोलते हुए डरे, पर विजय प्राप्त करने की लालसा में किसी तरह जी कड़ा करके ज़ोर से बोले—"हाँ, अश्वत्थामा मारा गया।" परंतु यह कहते-कहते अंत में धीमे स्वर में यह भी कह दिया कि—"मनुष्य नहीं, हाथी।" इसके साथ ही भीम तथा अन्य पांडवों ने ज़ोरों का शंखनाद और सिंहनाद किया, जिससे युधिष्ठिर के अंतिम वचन उस शोर में लुप्त हो गए।

युधिष्ठिर के मुँह से यह सुनते ही चारों ओर हाहाकार मच गया और इसी हाहाकार के बीच धृष्टद्युम्न ने ध्यानमग्न आचार्य की गरदन पर खड्ग से ज़ोर का वार किया। आचार्य द्रोण का सिर तत्काल ही धड़ से अलग होकर गिर पड़ा।

0751CH37

37 कर्ण और दुर्योधन भी मारे गए

द्रोण के मारे जाने पर कौरव-पक्ष के राजाओं ने कर्ण को सेनापति मनोनीत किया। मद्रराज शल्य कर्ण के सारथी बने। दूसरे दिन कर्ण के सेनापतित्व में फिर से घमासान युद्ध जारी हो गया। अर्जुन की रक्षा करता हुआ भीम, अपने रथ पर उसके पीछे-पीछे चला और दोनों एक साथ कर्ण पर टूट पड़े। जब दु:शासन ने यह देखा, तो उसने भीम पर बाणों की वर्षा कर दी। उसको भीम ने एक ही धक्के में ज़मीन पर गिरा दिया और उसका एक-एक अंग तोड़-मरोड़ डाला। भीम मैदान में नाचने-कूदने लगा और चिल्लाने लगा—"मेरी एक प्रतिज्ञा पूरी हुई। अब दुर्योधन की बारी है। उसका काम-तमाम करना बाकी है।"

भीमसेन का वह भयानक रूप देखकर कर्ण का भी शरीर काँपने लगा। तभी अश्वत्थामा को दुर्योधन ने पांडवों पर हमला करने की आज्ञा दी। कर्ण ने अर्जुन पर एक ऐसा बाण चलाया जो आग उगलता गया। अर्जुन की ओर उस भयानक तीर को आता हुआ देखकर कृष्ण ने रथ को पाँव के अँगूठे से दबा दिया, जिससे रथ ज़मीन में पाँच अँगुल धँस गया। कृष्ण की इस युक्ति से अर्जुन मरते-मरते बचा। कर्ण का चलाया हुआ सर्पमुखास्त्र फुँफकारता हुआ आया और अर्जुन का मुकुट उड़ा ले गया। इस पर अर्जुन के क्रोध का ठिकाना न रहा। उसने जोश के साथ कर्ण पर बाण-वर्षा कर दी। तभी अचानक कर्ण के रथ का बाईं तरफ़ का पहिया धरती में धँस गया।

इससे कर्ण घबरा गया और बोला–"अर्जुन! ज़रा ठहरो। मेरे रथ का पहिया कीचड़ में फँस गया है। पांडु-पुत्र, तुम्हें धर्म-युद्ध करने का जो यश प्राप्त हुआ है, उसे व्यर्थ ही न गँवाओ। मैं ज़मीन पर खड़ा रहूँ और तुम रथ पर बैठे-बैठे मुझ पर बाण चलाओ, यह ठीक नहीं होगा। ज़रा रुको।"

कर्ण की ये बातें सुनकर श्रीकृष्ण बोले–"कर्ण! जब दु:शासन, दुर्योधन और तुम द्रौपदी को भरी सभा में घसीटकर लाए थे, उस वक्त तुम्हें धर्म की याद आई थी? जब दूधमुँहे बच्चे अभिमन्यु को तुम सात लोगों ने एक साथ घेरकर निर्लज्जता के साथ मार डाला था, तब तुम्हारा धर्म कहाँ था? और आज जब मुसीबत सामने खड़ी दिखाई दे रही है, तो तुमको धर्म याद आ रहा है!"

श्रीकृष्ण की इस झिड़की का कर्ण से कोई उत्तर देते न बना। उसने सिर झुका लिया और अटके हुए रथ पर से ही युद्ध जारी रखा। इतने में कर्ण का एक बाण अर्जुन को जा लगा, तो वह थोड़ी देर के लिए विचलित हो उठा। बस, यही ज़रा सा समय पाकर कर्ण रथ से उतर पड़ा और रथ का पहिया उठाकर उसे समतल पर लाने की कोशिश करने लगा। कर्ण के हज़ार प्रयत्न करने पर भी पहिया गड्ढे से निकलता न था। यह स्थिति देख श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा–"अर्जुन, अब देरी न करो, हिचकिचाओ मत। इसी समय इसे खत्म कर दो।"

श्रीकृष्ण की यह बात मानकर अर्जुन ने एक बाण तानकर ऐसा मारा कि कर्ण का सिर कटकर ज़मीन पर गिर पड़ा। जब दुर्योधन को इस बात की खबर मिली कि युद्ध में कर्ण भी मारा गया है, तो उसके शोक की सीमा न रही। दुर्योधन की इस अवस्था पर कृपाचार्य को बड़ा तरस आया। उन्होंने दुर्योधन को सांत्वना देते हुए कहा–"राजन्! अब तुम्हारा कर्तव्य यही है कि पांडवों से किसी प्रकार संधि कर लो। अब युद्ध बंद करना ही श्रेयस्कर होगा।" यद्यपि दुर्योधन हताश हो चुका था, फिर भी कृपाचार्य की यह सलाह उसे बिलकुल पसंद नहीं आई। वह उसे मानने के लिए तैयार न हुआ। सभी कौरव वीरों ने दुर्योधन की बातों का समर्थन किया और कहा कि युद्ध जारी रखना ही ठीक होगा। इस पर सबकी सलाह से मद्रराज शल्य को सेनापति नियुक्त किया गया। इसलिए शल्य के सेनापतित्व में फिर से युद्ध जारी हुआ।

पांडवों की सेना के संचालन का पूरा दायित्व अब युधिष्ठिर ने स्वयं अपने कंधों पर ले लिया। शल्य पर उन्होंने स्वयं आक्रमण किया। युधिष्ठिर ने शल्य पर शक्ति का प्रयोग किया और मद्रराज शल्य मृत होकर रथ पर से धड़ाम से गिर पड़े। जब शल्य भी मारा गया, तो कौरव-सेना नि:सहाय-सी हो गई। फिर भी, धृतराष्ट्र के रहे-सहे पुत्रों ने हिम्मत न हारी। दूसरी ओर शकुनि और सहदेव का युद्ध हो रहा था। तलवार की पैनी धार के समान नोंकवाला एक बाण शकुनि पर चलाते हुए सहदेव ने गरजकर कहा–"शकुनि! अपने किए का फल भुगत ही ले!" और मानो उसकी बात सफल हो गई। बाण धनुष से निकला नहीं कि शकुनि का सिर कटकर गिरा पड़ा।

इस प्रकार कौरव-सेना के सारे वीर कुरुक्षेत्र की भूमि पर सदा के लिए सो गए। अकेला

दुर्योधन जीवित बचा था, अब उसके पास न तो सेना थी, न रथ। उस वीर की स्थिति बड़ी दयनीय थी। ऐसी हालत में दुर्योधन अकेला ही हाथ में गदा लिए हुए एक जलाशय की ओर चुपके से चल दिया। उधर दूसरे दिन युधिष्ठिर और उनके भाई उसे खोजते हुए उसी जलाशय पर जा पहुँचे, जहाँ वह छिपा हुआ बैठा था। श्रीकृष्ण भी उनके साथ थे। उन सबको यह पता चल गया था कि दुर्योधन जलाशय में छिपा हुआ है। युधिष्ठिर ने कहा–"दुर्योधन! अपने कुटुंब और वंश का नाश कराने के बाद अब पानी में छिपकर प्राण बचाना चाहते हो?"

यह सुनकर दुर्योधन ने व्यथित होकर कहा–"मैं न तो डरा हुआ ही हूँ और न मुझे प्राणों का ही मोह है। फिर भी, सच पूछो तो युद्ध से मेरा जी हट गया है। मेरे सभी संगी–साथी और बंधु–बांधव मारे जा चुके हैं। अब मैं बिलकुल अकेला हूँ। राज्य–सुख का मुझे लोभ नहीं रहा। यह सारा राज्य अब तुम्हारा ही है। निश्चिंत होकर तुम्हीं इसका उपभोग करो।"

युधिष्ठिर ने गरजते हुए कहा–"दुर्योधन! एक दिन वह था, जब तुम्हीं ने कहा था कि सूई की नोंक जितनी ज़मीन भी नहीं दूँगा।"

दुर्योधन ने जब स्वयं युधिष्ठिर के मुख से ये कठोर बातें सुनीं, तो उसने गदा उठा ली और जल में ही उठ खड़ा हुआ और बोला–"अच्छा! यही सही! तुम एक–एक करके मुझसे भिड़ लो! मैं अकेला हूँ और तुम पाँच हो। पाँचों का अकेले के साथ लड़ना न्यायोचित नहीं। मैं थका हुआ और घायल हूँ। कवच भी मेरे पास नहीं है। इसलिए एक–एक करके निपट लो। चलो!"

यह सुनकर युधिष्ठिर बोले–"यदि अकेले पर कइयों का हमला करना धर्म नहीं, तो बालक अभिमन्यु कैसे मारा गया था?" यह सुनकर दुर्योधन जलाशय से बाहर निकल आया और उसने भीम से गदा युद्ध करने की इच्छा प्रकट की। भीम भी राज़ी हो गया और दोनों में गदा युद्ध शुरू हो गया। इस तरह बड़ी देर तक युद्ध जारी रहा। श्रीकृष्ण ने इशारों में ही अर्जुन को बताया कि भीम दुर्योधन की जाँघ पर गदा मारेगा, तो जीत जाएगा। भीम ने श्रीकृष्ण का यह इशारा तुरंत भाँप लिया और अचानक दुर्योधन पर झपट पड़ा। उसकी जाँघ पर ज़ोर से गदा का प्रहार किया। जाँघ टूट जाने के कारण अधमरी अवस्था में पड़े हुए दुर्योधन के दिल में फिर से क्रोध और द्वेष की आग–सी भड़क उठी। वह चिल्लाकर बोला–"कृष्ण! धर्म युद्ध करनेवाले हमारे पक्ष के सारे यशस्वी महारथियों को तुमने ही कुचक्र रचकर मरवा डाला है। यदि तुमने कुचक्र न रचा होता, तो कर्ण, भीष्म, द्रोण भला समर में परास्त होनेवाले थे?"

मरणासन्न अवस्था में दुर्योधन को इस प्रकार विलाप करता देख श्रीकृष्ण बोले–"दुर्योधन! तुम अपने ही किए हुए कर्मों का फल पा रहे हो। तुम यह क्यों नहीं समझते और उसका पश्चाताप करते? अपने अपराध के लिए दूसरों को दोष देना बेकार है। तुम्हारे नाश का कारण मैं नहीं हूँ। लालच में पड़कर तुमने जो महापाप किया था, उसी का यह फल तुम्हें भुगतना पड़ रहा है।"

0751CH38

38 अश्वत्थामा

दुर्योधन पर जो कुछ बीती, उसका हाल सुनकर अश्वत्थामा बहुत क्षुब्ध हो उठा। उसके पिता द्रोणाचार्य को मारने के लिए जो कुचक्र रचा गया था, वह उसे भूला नहीं था। वह उस स्थान पर जा पहुँचा, जहाँ दुर्योधन मृत्यु की प्रतीक्षा करता हुआ पड़ा था। दुर्योधन के सामने जाकर अश्वत्थामा ने दृढ़तापूर्वक प्रतिज्ञा की कि वह आज ही रात में पांडवों को नष्ट करके रहेगा।

मृत्यु की प्रतीक्षा करते हुए दुर्योधन ने जब यह सुना, तो उसका पुराना वैर फिर से जाग्रत हो गया और उसे कुछ प्रसन्नता हुई। उसने आसपास खड़े हुए लोगों से कहकर अश्वत्थामा को कौरव-सेना का विधिवत् सेनापति बनाया और बोला–"आचार्य-पुत्र! शायद मेरा यह अंतिम कार्य है। शायद आप ही मुझे शांति दिला सकें। मैं बड़ी आशा से आपकी राह देखता रहूँगा।"

सूरज डूब चुका था, रात हो गई थी। एक बड़े बरगद के पेड़ के नीचे अश्वत्थामा, कृपाचार्य, और कृतवर्मा रात बिताने की गरज़ से ठहरे। कृप और कृतवर्मा बहुत थके हुए थे। इसलिए दोनों वहीं पड़े-पड़े सो गए। लेकिन अश्वत्थामा को नींद नहीं आई। अश्वत्थामा सोचने लगा–'मैं इन पांडवों और पिता जी की हत्या करनेवाले धृष्टद्युम्न को उनके संगी-साथियों समेत एक साथ ही क्यों न मार डालूँ? अभी रात का समय है और वे सब अपने शिविरों में पड़े सो रहे होंगे। इस समय उन सबका वध कर डालना बहुत सुगम होगा।' अश्वत्थामा ने कृपाचार्य को जगाकर उनको अपना निश्चय सुनाया।

अश्वत्थामा की ये बातें सुनकर कृपाचार्य व्यथित हो गए। वह बोले–"अश्वत्थामा! सोते हुओं को मारना कभी भी धर्म नहीं हो सकता। तुम यह विचार छोड़ दो।" यह सुनकर अश्वत्थामा झल्लाकर बोला–"आपने भी क्या यह धर्म-धर्म की रट लगा रखी है?"

दृढ़तापूर्वक अपनी इच्छा जताकर अश्वत्थामा पांडवों के शिविर की ओर जाने को उठा। यह देखकर कृपाचार्य और कृतवर्मा भी अश्वत्थामा के साथ हो लिए। आधी रात बीत चुकी थी। पांडवों के शिविर में भी सभी सैनिक मीठी नींद में सो रहे थे। अश्वत्थामा पहले धृष्टद्युम्न के शिविर में घुसा और उसने सोए हुए धृष्टद्युम्न को पैरों तले ऐसा कुचला कि वह तत्काल ही मर गया। इसी प्रकार सभी पांचाल-वीरों को अश्वत्थामा ने कुचलकर भयानक ढंग से मार डाला और द्रौपदी के पुत्रों की भी एक-एक करके हत्या कर दी।

कृपाचार्य और कृतवर्मा ने भी इस हत्याकांड में अश्वत्थामा का हाथ बँटाया। वहाँ तीनों ने ऐसे-ऐसे अत्याचार किए, जैसे कि अब तक किसी ने सुने भी न थे। उन्होंने वहाँ आग लगा दी। आग भड़क उठी और सारे शिविरों में फैल गई। इससे सोए हुए सारे सैनिक जाग गए और भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे। उन सबको अश्वत्थामा ने बड़ी निर्दयता से मार डाला। दुर्योधन के पास पहुँचकर अश्वत्थामा ने कहा–"महाराज दुर्योधन! आप अभी जीवित हैं क्या? देखिए, आपके लिए मैं ऐसा अच्छा समाचार लाया हूँ कि

जिसे सुनकर आपका कलेजा ज़रूर ठंडा हो जाएगा। जो कुछ हम लोगों ने किया है, उसे आप ध्यान से सुनें। सारे पांचाल खत्म कर दिए गए हैं। पांडवों के भी सारे पुत्र मारे गए हैं। पांडवों की सारी सेना का हमने सोते में ही सर्वनाश कर दिया। पांडवों के पक्ष में अब केवल सात ही व्यक्ति जीवित बच गए हैं। हमारे पक्ष में कृपाचार्य, कृतवर्मा और मैं–तीन ही रह गए हैं।"

यह सुनकर दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ और बोला–"गुरु भाई अश्वत्थामा, आपने मेरी खातिर वह काम किया है, जो न भीष्म पितामह से हुआ और न जिसे महावीर कर्ण ही कर सके।" इतना कहकर दुर्योधन ने अपने प्राण त्याग दिए।

द्रौपदी की दयनीय अवस्था की क्या कहें! युधिष्ठिर के पास आकर वह कातर स्वर में पुकार उठी–"क्या इस पापी अश्वत्थामा से बदला लेनेवाला हमारे यहाँ कोई नहीं रहा है?"

शोक-विह्वल द्रौपदी की हालत देखकर पाँचों पांडव अश्वत्थामा की खोज में निकले। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते आखिर उन्होंने गंगा नदी के तट पर छिपे हुए अश्वत्थामा का पता लगा ही लिया। अश्वत्थामा और भीमसेन में युद्ध छिड़ गया लेकिन अंत में अश्वत्थामा हार गया।

पांडव-वंश का नामोनिशान तक मिट गया होता, लेकिन उत्तरा के गर्भ की रक्षा हो गई। समय पर उत्तरा ने परीक्षित को जन्म दिया। यही परीक्षित पांडवों के वंश का एकमात्र चिह्न रह गया था।

हस्तिनापुर का सारा नगर नि:सहाय स्त्रियों और अनाथ बच्चों के रोने-कलपने के हृदय-विदारक शब्दों से गूँज उठा। युद्ध समाप्त होने का समाचार पाकर हज़ारों नि:सहाय स्त्रियों को लेकर वृद्ध महाराज धृतराष्ट्र कुरुक्षेत्र की समर-भूमि में गए, जहाँ एक ही वंश के बंधु-बांधवों ने एक-दूसरे से भयानक युद्ध करके अपने ही कुल का सर्वनाश कर डाला था। धृतराष्ट्र ने बीती बातों का स्मरण करते हुए बहुत विलाप किया।

0751CH39

39 युधिष्ठिर की वेदना

कुछ देर बाद युधिष्ठिर रोती-बिलखती हुई स्त्रियों के समूह को पार करते हुए भाइयों व श्रीकृष्ण सहित धृतराष्ट्र के पास आए व नम्रतापूर्वक हाथ जोड़े खड़े रहे। इसके बाद धृतराष्ट्र ने भीम को अपने पास बुलाया। धृतराष्ट्र के हाव-भाव से श्रीकृष्ण ने अंदाज़ा लगाया कि इस समय धृतराष्ट्र पुत्र-शोक के कारण क्रोध में हैं। इससे भीम को उनके पास भेजना ठीक न होगा। अत: उन्होंने भीमसेन को तो एक तरफ़ हटा लिया और उसके स्थान पर लोहे की एक प्रतिमा दृष्टिहीन राजा धृतराष्ट्र के आगे लाकर खड़ी कर दी। श्रीकृष्ण का भय सही साबित हुआ। वृद्ध राजा ने प्रतिमा

को भीम समझकर ज्योंही छाती से लगाया, त्योंही उन्हें याद हो आया कि मेरे कितने ही प्यारे बेटों को इस भीम ने मार डाला है। इस विचार के मन में आते ही धृतराष्ट्र क्षुब्ध हो उठे और उसे ज़ोरों से छाती से लगाकर कस लिया। प्रतिमा चूर-चूर हो गई। पर प्रतिमा के चूर हो जाने के बाद धृतराष्ट्र को खयाल आया कि मैंने यह क्या कर डाला! वह दुखी हो गए और शोक विह्वल होकर बोले—"हाय! क्रोध में आकर मूर्खतावश मैंने यह क्या कर डाला! भीम की हत्या कर दी।" यह कहकर वह बुरी तरह विलाप करने लगे।

इस पर श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र से कहा—"राजन्, क्षमा करें। मुझे पहले ही से मालूम था कि क्रोध में आकर आप ऐसा काम करेंगे। इसलिए उस अनर्थ को टालने के लिए मैंने पहले से ही उचित प्रबंध कर रखा था। आपने जिसको नष्ट किया है, वह भीमसेन का शरीर नहीं, बल्कि लोहे की मूर्ति थी। आपके क्रोध का ताप उस पर ही उतरकर शांत हो गया। भीमसेन अभी जीवित है।"

यह सुनकर धृतराष्ट्र के मन को धीरज बँधा और उन्होंने अपना क्रोध शांत कर लिया। उन्होंने सभी पांडवों को आशीर्वाद देकर विदा किया। धृतराष्ट्र से आज्ञा पाकर पाँचों भाई श्रीकृष्ण के साथ गांधारी के पास गए। गांधारी का शोकोद्वेग देखकर अर्जुन भी डर गया और श्रीकृष्ण के पीछे ही खड़ा रहा। कुछ बोला नहीं। गांधारी ने अपने दग्ध-हृदय को धीरे-धीरे शांत कर लिया और पांडवों को आशीर्वाद देकर विदा किया। युधिष्ठिर आदि सब वहाँ से चले गए, परंतु द्रौपदी वहीं गांधारी के पास ही रही। अपने पाँचों सुकुमार बालकों के मारे जाने के कारण द्रौपदी शोकविह्वल होकर रो रही थी। उसकी अवस्था पर गांधारी को बड़ी दया आई। वह बोली—"बेटी, दुखी न होओ। मैं और तुम एक ही जैसी हैं। हमें सांत्वना देनेवाला कौन है? इस सबकी दोषी तो मैं ही हूँ। मेरे ही दोष के कारण आज इस कुल का सर्वनाश हुआ है। पर अब अपने को भी दोष देने से क्या लाभ?"

युधिष्ठिर के मन में यह बात समा गई थी कि हमने अपने बंधु-बांधवों को मारकर राज्य पाया है, इससे उनको भारी व्यथा रहने लगी। अंत में उन्होंने वन में जाने का निश्चय किया, ताकि इस पाप का प्रायश्चित हो सके। यह सुनकर सब भाइयों पर मानो वज्र गिर गया। वे बहुत चिंतित हो उठे और बारी-बारी से सब युधिष्ठिर को समझाने लगे। अर्जुन ने गृहस्थ धर्म की श्रेष्ठता पर प्रकाश डाला। भीमसेन ने कटु वचनों से काम लिया। नकुल ने प्रमाणपूर्वक यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि कर्म-मार्ग न केवल सुगम है, बल्कि उचित भी है, जबकि संन्यास-मार्ग कँटीला और दुष्कर है। इस तरह देर तक युधिष्ठिर से वाद-विवाद होता रहा। सहदेव ने नकुल के पक्ष का समर्थन किया और अंत में अनुरोध किया कि हमारे पिता, माता, आचार्य, बंधु सब कुछ आप ही हैं। हमारी ढिठाई को क्षमा करें। द्रौपदी भी इस वाद-विवाद में पीछे न रही। वह बोली—"अब तो आपका यही कर्तव्य है कि राजोचित धर्म का पालन करते हुए राज्य-शासन करें और चिंता न करें।"

तब शासन-सूत्र ग्रहण करने से पहले युधिष्ठिर भीष्म के पास गए, जो कुरुक्षेत्र में शर-शय्या पर पड़े हुए मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे। पितामह भीष्म ने युधिष्ठिर को धर्म का मर्म समझाया और उपदेश भी दिया। धृतराष्ट्र भी युधिष्ठिर के

पास आकर सांत्वना देते हुए बोले–"बेटा, तुम्हें इस तरह शोकविह्वल नहीं होना चाहिए। दुर्योधन ने जो मूर्खताएँ की थीं, उनको सही समझकर मैंने धोखा खाया। इस कारण मेरे सौ-के-सौ पुत्र उसी भाँति काल-कवलित हो गए, जैसे सपने में मिला हुआ धन नींद खुलने पर लुप्त हो जाता है। अब तुम्हीं मेरे पुत्र हो। इस कारण तुम्हें दुखी नहीं होना चाहिए।"

0751CH40

40 पांडवों का धृतराष्ट्र के प्रति व्यवहार

कौरवों पर विजय पा लेने के बाद सारे राज्य पर पांडवों का एकछत्र अधिकार हो गया और उन्होंने कर्तव्य समझकर राज-काज सँभाल लिया। फिर भी जिस संतोष और सुख की उन्हें आशा थी, वह प्राप्त नहीं हुआ।

युधिष्ठिर ने अपने भाइयों को आज्ञा दे रखी थी कि पुत्रों के बिछोह से दुखी राजा धृतराष्ट्र को किसी भी तरह की व्यथा न पहुँचने पाए। सिवाए भीमसेन के सब पांडव युधिष्ठिर के ही आदेशानुसार व्यवहार करते थे। पांडव वृद्ध धृतराष्ट्र का खूब आदर करते हुए उन्हें हर प्रकार का सुख एवं सुविधा पहुँचाने के प्रयत्न में लगे रहते थे, जिससे धृतराष्ट्र को अपने पुत्रों का अभाव महसूस न हो।

धृतराष्ट्र भी पांडवों से स्नेहपूर्ण व्यवहार किया करते थे। न तो पांडव उन्हें अप्रिय समझते थे और न धृतराष्ट्र ही पांडवों को अप्रिय समझते थे। परंतु भीमसेन कभी-कभी ऐसी बातें कर दिया करता था, जिससे धृतराष्ट्र के दिल को चोट पहुँचती। युधिष्ठिर के राजाधिराज बनने के थोड़े ही दिन बाद भीमसेन धृतराष्ट्र की किसी आज्ञा को परिणत न होने देता था। कभी-कभी धृतराष्ट्र को सुनाते हुए वह कह भी देता था कि दुर्योधन और उसके साथी अपनी नासमझी के कारण मारे गए हैं।

बात यह थी कि दुर्योधन, दु:शासन आदि द्वारा किए गए अत्याचारों और अपमानों का दुखद स्मरण भीमसेन के मन में अमिट रूप से अंकित हो चुका था। इस कारण न तो वह अपना पुराना वैर भूल पाता था और न क्रोध को ही चबा पाता था। कभी-कभी वह गांधारी तक के आगे उलटी-सीधी बातें कर दिया करता था। भीमसेन की इन तीखी बातों से धृतराष्ट्र के हृदय को बहुत चोट पहुँचती थी। गांधारी को भी इस कारण बहुत दुख होता था। परंतु वह विवेकशीला थीं और धर्म का मर्म जानती थीं। इसलिए भीमसेन की बातें चुपचाप सह लिया करती थीं तथा कुंती से स्फूर्ति पाकर धीरज धर लिया करती थीं।

यद्यपि महाराज युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र को हर प्रकार से आराम पहुँचाने का उचित प्रबंध कर रखा था, फिर भी धृतराष्ट्र का जी सुखभोग में

नहीं लगता था। एक तो वह बहुत वृद्ध हो गए थे, फिर भीमसेन की अप्रिय बातों से कभी-कभी उनका हृदय खिन्न हो जाता था। धीरे-धीरे उनके मन में विराग आ गया। इन बातों में गांधारी भी उनका अनुसरण किया करती थीं।

एक दिन धृतराष्ट्र धर्मराज के भवन में गए और उनसे बोले—"तुम तो शास्त्रों के ज्ञाता हो और यह भी जानते हो कि हमारे वंश की परंपरागत प्रथा के अनुसार हम वृद्धों को वल्कल धारण करके वन में जाना चाहिए। इसके अनुसार ही मैं अब तुम्हारी भलाई की कामना करता हुआ वन में जाकर रहना चाहता हूँ। तुम्हें इस बात की अनुमति मुझे देनी ही होगी।"

धृतराष्ट्र की ये बातें सुनकर युधिष्ठिर बहुत खिन्न हुए और भरे हुए हृदय से बोले—"अब मैंने तय किया है कि आज से आपका ही पुत्र युयुत्सु राजगद्दी पर बैठे या जिसे आप चाहें राजा बना दें। अथवा शासन की बागडोर स्वयं अपने हाथों में ले लें और प्रजा का पालन करें। मैं वन में चला जाऊँगा। राजा मैं नहीं बल्कि आप ही हैं। मैं ऐसी हालत में आपको अनुमति कैसे दे सकता हूँ?"

यह सुनकर धृतराष्ट्र बोले—"कुंती-पुत्र! मेरे मन में वन में जाकर तपस्या करने की इच्छा बड़ी प्रबल हो रही है। तुम्हारे साथ मैं इतने बरसों तक सुखपूर्वक रहा और तुम और तुम्हारे भाई सभी मेरी सेवा-सुश्रूषा करते रहे। वन में जाने का मेरा ही समय है, तुम्हारा नहीं। इस कारण वन में जाने की अनुमति तुम्हें देने का सवाल ही नहीं उठता। यह अनुमति तो तुमको देनी ही होगी।"

यह सुनकर युधिष्ठिर अंजलिबद्ध होकर काँपते हुए खड़े रहे। वह कुछ बोल न सके। उनसे ये बातें कहने के बाद धृतराष्ट्र आचार्य कृप एवं विदुर से बोले—"भैया विदुर और आचार्य! आप लोग महाराज युधिष्ठिर को समझा-बुझाकर मुझे वन में जाने की अनुमति दिलाइए।" और इस तरह से युधिष्ठिर से वन में जाने की अनुमति पाकर वृद्ध राजा धृतराष्ट्र उठे और गांधारी के कंधे पर हाथ रखकर लाठी टेकते हुए वन के लिए रवाना हुए।

माता कुंती भी उनके साथ रवाना हुईं। गांधारी ने अपनी आँखों पर पट्टी बाँधी हुई थी, इसीलिए वह कुंती के कंधे पर हाथ रखकर रास्ता टटोलती हुई जाने लगीं और इस तरह तीनों वृद्ध राजकुटुंबी राजधानी की सीमा पारकर वन की ओर चले।

धर्मराज समझ रहे थे कि माता कुंती गांधारी को थोड़ी दूर तक विदा करने के लिए साथ जा रही हैं। वह सँभलकर बोले—"माँ, तुम वन में क्यों जा रही हो? तुम्हारा जाना तो ठीक नहीं है। तुम्हीं ने आशीर्वाद देकर युद्ध के लिए भेजा था। अब तुम्हीं हमें छोड़कर वन को जाने लगीं। यह ठीक नहीं है।" इतना कहते-कहते युधिष्ठिर का गला भर आया। किंतु उनके आग्रह करने पर भी कुंती अपने निश्चय पर अटल रहीं। युधिष्ठिर अवाक् होकर खड़े हुए देखते रहे।

धृतराष्ट्र, गांधारी और कुंती ने तीन वर्ष तक वन में तपस्वियों का-सा जीवन व्यतीत किया। संजय भी उनके साथ था।

0751CH41

41 श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर

महाभारत के युद्ध की समाप्ति के बाद श्रीकृष्ण छत्तीस बरस तक द्वारका में राज्य करते रहे। उनके सुशासन में यदुवंश ने सुख-समृद्धि को भोगा, परंतु आपसी फूट के कारण अंततः यह विशाल यदुवंश समाप्त हो गया। यह वंश-नाश देखकर बलराम को असीम शोक हुआ और उन्होंने वहीं समाधि में बैठकर शरीर त्याग दिया।

सब बंधु-बांधवों का सर्वनाश हुआ देखकर श्रीकृष्ण भी ध्यानमग्न हो गए और समुद्र के किनारे स्थित वन में अकेले विचरण करते रहे। जो कुछ हुआ था, उस पर विचार करके उन्होंने जान लिया कि संसार छोड़कर जाने का उनका भी समय आ गया है। यह सोचते-सोचते वह भी वहीं ज़मीन पर एक पेड़ के नीचे लेट गए। इतने में कोई शिकारी शिकार की तलाश में घूमता-फिरता उधर से आ निकला। सोए हुए श्रीकृष्ण को शिकारी ने दूर से हिरन समझा और धनुष तानकर एक तीर मारा। तीर श्रीकृष्ण के तलुए को छेदता हुआ शरीर में घुस गया और उनके देहावसान का कारण बन गया।

यह शोकजनक समाचार हस्तिनापुर पहुँचा और पांडवों के मन में सांसारिक जीवन के प्रति विराग छा गया। जीवित रहने की चाह अब उनमें न रही। अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को राजगद्दी पर बैठाकर पाँचों पांडवों ने द्रौपदी को साथ लेकर तीर्थयात्रा करने का निश्चय किया। वे हस्तिनापुर से रवाना होकर अनेक पवित्र स्थानों के दर्शन करते हुए अंत में हिमालय की ओर चल दिए।

इधर परीक्षित और उसके वंशजों ने न्यायोचित शासन की परंपरा का निर्वाह करते हुए दीर्घ समय तक राज्य किया।❐